ैज्ञानिक

विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

NMR तकनीक से लिया गया चित्र

ई-सितंबर 1985

17 अंक 3

2.50 रु.

What has ATOMIC ENERGY got to do with surgical dressings?
or cottonwool?
sutures?
catheters?
plastic syringes?
pharmaceutical packaging material?
or, a host of other
ready-for-use medical products?

PLENTY

Gamma radiation from radioisotopes is the modern route to sterility in medical products. Whether it be surgical dressings or cottonwool, disposable syringes or sutures, or any of the thousands of items used in hospitals and dispensaries, gamma radiation makes them absolutely safe and sterile.
Sterilisation through radiation is already an established practice in India.

isomed Asia's first Industrial Radiation Sterilisation Plant is in operation at Trombay near Bombay since 1973.

What is so special about Radiation Sterilisation?

- ☐ It is the most reliable sterilisation process known.
- ☐ The penetrating gamma rays sterilise your products in their final packaged form.
- ☐ So long as the packaging remains intact, the products, remain sterile.
- ☐ This is a cold process. Radiation does not raise the temperature of the product So, thermo plastic products can be sterilised without damage.

If you have any medical products to sell, try sterilising them by radiation. Get in touch with.

isomed

Bhabha Atomic Research Centre, Trombay, Bombay 400 085

वैज्ञानिक

वर्ष : 17 अंक 3

जुलाई–सितंबर 1985

व्यवस्थापन मंडल

डॉ. उमेश चंद्र मिश्र
राम निवास आर्य
तीरथ जे. असनानी
राजेश चंद्र मित्तल
योगेंद्र देव वशिष्ठ
श्रीमती वासंती अय्यर

संपादक

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'
आइवन बी. राम
सुमन कुमार शर्मा

कार्यालय

'वैज्ञानिक'
हिंदी–विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
बंबई–400 085.

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष –	15 रु.	10 रु.
तीन वर्ष –	40 रु.	25 रु.
आजीवन –	150 रु.	100 रु.

विदेश में

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष –	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष –	70 रु.	40 रु.

लेख

- नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद और जीवशास्त्र 7
  —गिरिजेश गोविल
- जालों की दुनिया 12
  —राज कुमार जैन
- पेट्रोल मितव्ययता के लिए एक नयी इंजन प्रणाली 18
  —राजेंद्र कुमार सक्सेना
- आइए, परमाणु के भीतर झांककर देखें (I) 22
  —जनार्दन स्वरूप
- विटामिन : स्वास्थ्य के लिए रामबाण 28
  —इकबाल हबीब

टिप्पणियां

- पेनिसिलीन 34
  —डॉ. अशोक कुमार गोस्वामी
- खेती में उपयोगी शैवालीय खादें 36
  —डॉ. उमेश पांडेय

स्तंभ

- संपादकीय 5
- बुद्धि कौशल की परख 33
- विज्ञान के बढ़ते कदम 39
- सिद्धांत/सूत्र/समीकरण 41
- बना कर देखें 43

पत्रिका में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद अथवा संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है. पत्रिका में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार परिषद के पास सुरक्षित हैं.

हिंदी - विज्ञान साहित्य परिषद्

पंजीकरण संख्या : BOM 64/70 GBBSD
25-4-1970

ट्रस्ट पं. संख्या : F 2005 बंबई

कार्यकारिणी

(1985-1986)

डॉ. पी. के. अय्यंगार	—	अध्यक्ष
डॉ. एस. एस. राममूर्ति	—	उपाध्यक्ष
राम निवास आर्य	—	सचिव
डॉ. सूर्य देव मिश्र	—	सहसचिव
तीरथ जे. असनानी	—	कोषाध्यक्ष
डॉ. भगवान कृष्ण गौड़	—	सदस्य
डॉ. राजेंद्र स्वरूप	—	सदस्य
डॉ. ललित हरि शर्मा	—	सदस्य
ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव	—	सदस्य
विनय कुमार श्रीवास्तव	—	सदस्य
अमर नाथ दुबे	—	सदस्य

मनोनीत सदस्य

एम. आर. बालकृष्णन डॉ. हर स्वरूप शर्मा

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

पिल कोर्ट, छठी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई–400020

फोन : 290914–15 टेलेक्स : 001–3122

तार : रेअरअर्थ बम्बई

—: हमारे उत्पादन :—

इलमेनाइट

रुटाइल

जरकॉन

जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)

जिरकोनियम ऑक्साइड

जिरकोनियम ऑक्सीक्लोराइड

गारनेट

सिलीमेनाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड

रेअर अर्थ्स फ्लोराइड

रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस्

सीरियम ऑक्साइड

सीरियम हाइड्रेट

सीरियम कार्बोनेट

ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइड्रेट)

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट – थोरियम ऑक्साइड

संपादकीय

न्यूक्लीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक

1946 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ. एडवर्ड परसैल तथा लगभग उसी दौरान डॉ. फेलिक्स ब्लॉक (स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय) ने प्रोटान फ्लिप (नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद–NMR) से उत्पन्न प्रेरित विभव के मापन के लिए एक विशेष उपकरण एवं विधि को वैज्ञानिक जगत में प्रस्तुत किया. इस उल्लेखनीय कार्य के लिए उन्हें 1952 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. इस विषय पर हुए कई नये एवं परिष्कृत यंत्रीकरण और अध्ययनों ने इस तकनीक को आज कैंसर रोग निदान (डायग्नोसिस) के क्षेत्र में एक प्रमुख स्थान प्रदान कर दिया है.

हाइड्रोजन जैविक संकाय का एक अभिन्न तत्व है. इसके नाभिक को प्रोटान भी कहा जाता है. यह तो सर्वविदित है कि नाभिक में प्रोटान अपने अक्ष पर एक लट्टू की भांति घूमते (स्पिन) रहते हैं जिसके फलस्वरूप एक विद्युत धारा उपत्न होती है और इसी तरह इसका अपना एक चुंबकीय क्षेत्र अक्ष की दिशा में निर्मित होता है. ऐसे तत्व को जब किसी बाहरी प्रबल चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाये तो नाभिक एक घुमाव (टॉर्क) का अनुभव करते हुए अपने आपको चुंबकीय क्षेत्र की दिशा में लाने का प्रयास करता है. हालांकि अपनी प्रकृति के अनुसार प्रोटान इस चुंबकीय घुमाव का प्रतिरोध करता है. परिणामस्वरूप यह बाह्य चुंबकीय क्षेत्र की दिशा के चारो ओर घसिटता (Precess) चला जाता है जिसका मान चुंबकीय क्षेत्र की प्रबलता पर निर्भर करता है. ऐसी स्थिति में पहले चुंबकीय क्षेत्र की लंबीय दिशा में एक दोलित (ऑसिलेटिंग) चुंबकीय क्षेत्र को लगाने पर एक नया प्रभाव देखने को मिलता है. यदि इस दोलित चुंबकीय क्षेत्र की आवृत्ति प्रिसेशन दर काफी भिन्न होती है तो स्थिति अप्रभावित रहती है. परंतु यदि आवृत्ति प्रिसेशन दर के बराबर हो जाती है तो एक अनुनाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है अर्थात प्रोटान चुंबकीय क्षेत्र की ऊर्जा को अवशोषित करके फ्लिप हो जाता है. इस घटना को नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद कहा जाता है.

साम्यावस्था नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद में दोलित (रेडियो आवृत्ति) चुंबकीय क्षेत्र लगातार

लगा रहता है. इसके अतिरिक्त यह प्रयोग दूसरे तरीके से भी संभव है जिसे स्पंदी एन. एम. आर. (स्पिन इको) कहा जाता है जिसमें नमूने को एक विद्युत चुंबकीय स्पंदी क्षेत्र में रखते हैं तथा फिर ऊर्जा क्षति की दर का अध्ययन करके यथोचित जानकारी प्राप्त की जाती है. वस्तुतः जब स्पंदी चुंबकीय क्षेत्र लगाया जाता है तो नाभिक द्वारा अवशोषित ऊर्जा का कुछ भाग चुंबकीय क्षेत्र हटाए जाने के बाद भी उसमें रहता है जिसका कुछ समय बाद क्षय होता है अर्थात नाभिकों को अपनी पूर्व स्थिति में आने में एक विशेष समय लगता है जिसे 'विश्रांति काल' कहा जाता है.

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि नाभिक का भी अपना एक चुंबकीय क्षेत्र होता है. ये नाभिक आपस में इससे प्रभावित रहते हैं. इसे आंतरिक क्षेत्र कहा जा सकता है. अतः अनुनाद आवृतियां, विश्रांति काल इत्यादि आंतरिक चुंबकीय क्षेत्र से प्रभावित होते हैं. इसलिए यदि अनुनाद आवृतियां एवं विश्रांति काल का बारीकी एवं शुद्धता से अध्ययन करें तो पदार्थ संरचना के बारे में जानकारी मिल सकती है. अतः नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद पदार्थ संरचना अध्ययन हेतु एक अ-विनाशकारी (नॉन डेस्ट्रिक्टिव) एवं कारगर तकनीक के रूप में प्रचलित है, साथ ही मस्तिष्क एवं शरीर के अन्य मुलायम तथा नाजुक अंगों व कोशिकाओं का इस तकनीक द्वारा प्रतिबिंबन कई मानों में अच्छा सिद्ध हो रहा है. इस विषय पर अधिक जानकारी इस अंक में दी जा रही है.

प्रस्तुत अंक 'वैज्ञानिक' का जुलाई-सितंबर 1985 अंक है जिसमें सिश्रित सामग्री संजोयी गयी है. शांतिपूर्ण कार्यों में परमाणु ऊर्जा का उपयोग किये जाने के संबंध में आज संसार भर में चर्चा है. हमारे देश में भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है. इसको देखते हुए यह महसूस किया गया है कि पाठकों को परमाणु रिएक्टरों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाये भविष्य में इस विषय पर एक विशेषांक प्रकाशित किये जाने की हमारी योजना है. इस विषय पर भी मौलिक लेख भेजने के लिए हम पाठकों से अनुरोध करते हैं.

* डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल

नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद और जीवशास्त्र

*

गिरिजेश गोविल
टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान, बंबई–400 005

नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक ने आज चिकित्सा के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है. जहां क्ष–किरणें शरीर में केवल हड्डियों वाले कठोर भागों के चित्र लेने में प्रयुक्त की जाती हैं, वहीं नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक शरीर के कठोर भागों के अतिरिक्त मुलायम, संवेदनशील तथा बड़े नाजुक भागों (मस्तिष्क, गर्भस्थ शिशु इत्यादि) के बारे में जानकारी देने में पूर्ण समर्थ हो गयी है. आण्विक जैविकी से संबंधित शोध कार्य में भी यह तकनीक अत्यंत उपयोगी है. प्रस्तुत लेख में इस तकनीक की कार्यविधि को स्पष्ट करते हुए इसकी उपयोगिता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है. –सं.

सन् 1945 में जब नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद (NMR) का आविष्कार हुआ तो वैज्ञानिकों ने समझा कि उन्हें नाभिक के चुंबकीय गुणों का एक बहुत ही उत्तम साधन मिल गया है. आविष्कार के प्रारंभिक वर्षों में भौतिक शास्त्र के अतिरिक्त इस तकनीक का उपयोग भूगर्भ शास्त्र में भी हुआ क्योंकि इस यंत्र द्वारा पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र बहुत सटीकता से मापा जा सकता था. सन 1955 तक इसका उपयोग रसायन शास्त्र में अणुसंरचना तथा रासायनिक प्रतिक्रियाओं के अण्वेषण में होने लगा. 1975 के बाद से यह तकनीक जीव–विज्ञान में जीवाणुओं से लेकर मानव शरीर तक अनेक प्रकार के अनुसंधान में भी बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है. एक वैज्ञानिक ने कहा है कि नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद एक सदाबहार वृक्ष की भांति है जो मानव सेवा में तरह–तरह के पुष्प तथा फल अर्पित करता रहा है. पिछले 40 वर्षों के इतिहास से तो यह कथन वास्तव में काफी सत्य प्रतीत होता है.

नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का प्रयोग हम उन परमाणुओं पर कर सकते हैं जिनके नाभिक में स्पिन (आभ्राम) हो. ऐसे परमाणुओं के नाभिक स्वयं एक छोटे चुंबक की तरह कार्य करते हैं. यदि इन्हें हम एक चुंबकीय क्षेत्र में रखें तो इस क्षेत्र के प्रभाव से नाभिकीय चुंबक कुछ विशेष दिशाओं में अपने–अपने ध्रुवों को अभिमुख कर लेते हैं. मान लीजिए हम ^{1}H, ^{13}C अथवा ^{31}P नाभिकों पर प्रयोग करना चाहते हैं. इन सभी नाभिकों के स्पिन (I) का मान $\frac{1}{2}$ है. ऐसे नाभिकीय चुंबक जिन दो दिशाओं में अभिमुख होते हैं वह है H_n के समानांतर और प्रतिसमानांतर. इन दिशाओं से संबंधित ऊर्जा भी भिन्न होती है. वास्तव में ऊर्जा का यह अंतर (ΔE) निम्नलिखित समीकरण द्वारा लिखा जा सकता है–

$$\Delta E = h\upsilon = 2\mu Hn$$

जहां μ नाभिकीय चुंबकों का आघूर्ण (moment) है तथा υ आवृत्ति का मान है जो क्वांटम सिद्धांत के अनुसार ΔE मान के क्वांटा के बराबर है. अब यदि हम ऐसे विकिरण द्वारा प्रायोगिक अणुओं को कंपित करें जिनकी आवृत्ति ठीक υ हो तो नाभिकीय चुंबक इस ऊर्जा को ग्रहण करके

अपनी दिशा बदल देंगे. इसी क्रिया को नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद कहते हैं.

इस समीकरण द्वारा दो बातें स्पष्ट होती हैं. एक तो यह कि υ का मान चुंबकीय क्षेत्र सामर्थ्य H_n तथा नाभिकीय के आघूर्ण पर निर्भर करता है. 2.3 टेसला (23,000 गॉस) पर कुछ नाभिकों की अनुनाद आवृत्ति चित्र–1 में दिखाई गयी है. 4.6 टेसला पर यह सभी आवृत्तियां दुगुनी हो जायेंगी. इस प्रकार 11.7 टेसला पर (जो इस प्रकार के प्रयोग में उपयोग में आनेवाला अधिकतम चुंबकीय क्षेत्र है) प्रोटान (^1H) की अनुनाद आवृत्ति 500 मेगाहर्ट है. वास्तव में इस आवृत्ति की तरंगें हम नित्य ही रेडियो में प्रयोग करते हैं. ध्यान रहे कि चूंकि नाभिकों की अनुनाद आवृत्तियों में काफी अंतर है इसलिए प्रत्येक प्रयोग में केवल एक ही प्रकार के नाभिकों का स्पेक्ट्रम लिया जा सकता है.

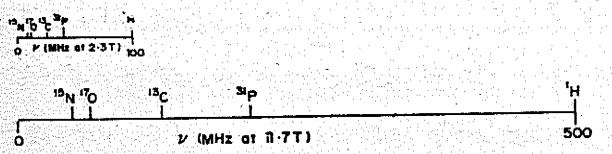

चित्र–1 : 2.3 तथा 11.7 टेसला पर कुछ विशेष नाभिकों की अनुनाद आवृत्ति.

अब यह बात स्पष्ट है कि यदि हम नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का प्रयोग करना चाहें तो हमें एक रेडियो प्रेषक (ट्रांसमीटर) एक रेडियो अभिग्राही तथा एक शक्तिशाली चुंबक की आवश्यकता पड़ेगी (चित्र–2). साथ में υ अथवा H_n को घटा–बढ़ा सकें, ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे हम समीकरण को संतुष्ट कर सकें. जैसे ही υ का मान समीकरण के अनुसार ठीक $\triangle E/\mu$ होगा वैसे ही परखनली के चारों ओर लगी कुंडली में एक विद्युत तरंग दौड़ जायेगी. प्रयोग में आनेवाला पदार्थ इस परखनली में ही रखा जाता है. इस लेख में हम प्रोटॉन अनुनाद की ही चर्चा करेंगे. परंतु इस प्रकार के प्रयोग जीव विज्ञान के अणुओं में विद्यमान करीब-करीब सभी प्रकार के परमाणुओं (जैसे कि C, N, H, O और P) पर किये जा सकते हैं.

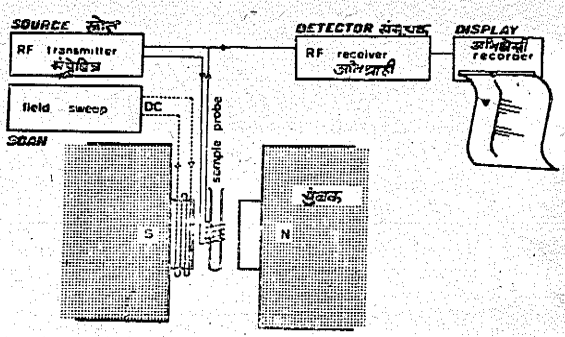

चित्र–2 : चुंबकीय अनुनाद में कार्य आने वाले यंत्र का एक ब्लॉक आरेख.

दूसरी बात यह है कि परखनली में जो द्रव रखते हैं उसके नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रॉन होते हैं. प्रायोगिक नाभिक पर यह छोटे छोटे इलेक्ट्रॉन चुंबक अपना प्रभाव डालते हैं. इस कारण, जो चुंबकीय क्षेत्र नाभिक पर विद्यमान हैं वह हमारे बाहरी चुंबक द्वारा जनित क्षेत्र (H_o) से थोड़ा भिन्न होता है. उदाहरण के लिए, चित्र –3 में प्रोप्रेनोलोल नामक रसायन (जो हृदय के कुछ रोगों में उपयोग किया जाता है) का स्पेक्ट्रम दिखाया गया है. अणु की संरचना के अनुसार प्रत्येक प्रोटॉन की आवृत्ति भिन्न है. यह अंतर करीब 10 भाग प्रति दस लाख के अंदर ही होते हैं. आधुनिक यंत्रों द्वारा हम 5 भाग प्रति करोड़ (0.3 हर्ट्ज) तक के अंतर नाप सकते हैं. वास्तव में इन यंत्रों की विभेदन शक्ति इतनी अधिक है कि यदि हम समान विभेदन शक्ति की दूरबीन बना सकें तो उसके द्वारा चंद्रमा के ऊपर एक मीटर के अंतर पर बैठे हुए दो अंतरिक्ष यात्रियों को पृथक–पृथक देखा जा सकता है.

इस उदाहरण से यह तो स्पष्ट है कि रसायन शास्त्र में हम इस प्रकार के वर्णक्रम से अणु संरचना से संबंधित महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं. परंतु यदि हम प्रकृति के बनाये हुए बृहत् अणु, जैसे प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड पर कार्य करना चाहें तो तीन तरह की कठिनाइयां सामने आती हैं. प्रथम तो यह कि नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद के लिए लगभग 4–5 मिलीग्राम शुद्ध पदार्थ चाहिए.

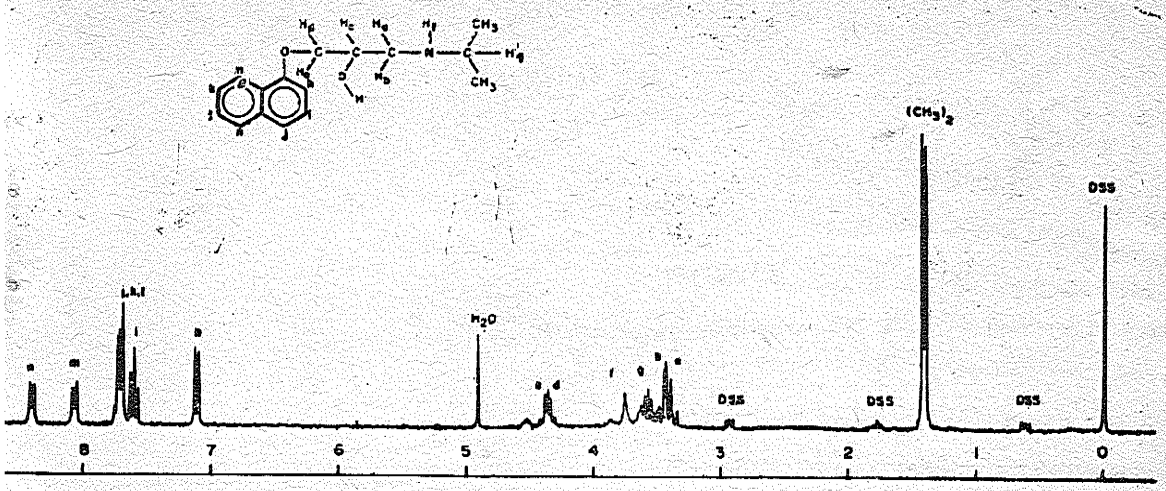

चित्र–3 : प्रोपेनोलॉल का नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद वर्णक्रम.

जीव रसायन शास्त्रियों के लिए इतना पदार्थ भी जुटाना प्रायः एक चुनौती होती है. दूसरी यह कि इन अणुओं में इतने अधिक प्रोटॉन हैं कि उनके संकेतों का विभेदन साधारण यंत्रों द्वारा कठिन है. इस समस्या का हल यह है कि अधिक से अधिक शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र पर प्रयोग किया जाये. टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान का यंत्र 11.7 टेसला पर कार्य करता है और यह विश्व के सबसे शक्तिशाली यंत्रों में से एक है. तीसरी समस्या, प्राप्त संकेतों का अणुओं में अलग–अलग प्रोटॉनों के अनुसार निर्धारण करना है. इस क्रिया के लिए पिछले दिनों एक नयी तकनीक का आविष्कार हुआ है जिसे द्वि–आयामी चुंबकीय अनुनाद (2D–NMR) कहते हैं. जैसा कि नाम से स्पष्ट है इस प्रकार के वर्णक्रम में दो अक्ष होते हैं. चूंकि इस प्रकार के चित्र में संकेतों की ऊंचाई दिखाने के लिए एक तृतीय अक्ष की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए एक विशेष ऊंचाई पर एक समानांतर तह को काटकर वर्णक्रम दर्शाते हैं (चित्र–4). अब इस प्रकार के चित्रों में विकर्ण पर स्थित संकेत तो चित्र–3 में दिखाये गये एक-आयामी वर्णक्रम की तरह ही हैं. इसके अतिरिक्त हमें कई संकेत विकर्ण के दोनों ओर व्यति (cross) संकेतों के रूप में दिखाई दे रहे हैं. ये संकेत तब आते हैं जब दो प्रोटॉनों की पारस्परिक दूरी 5 आंस्ट्रांम से कम हो. जब यह दूरी कम होती है, तब नाभिकीय चुंबक एक दूसरे से व्यतिसह संबंध स्थापित कर लेते हैं तथा चित्र में दिखाये गये व्यति संकेतों की तीव्रता इसी अंतर–प्रोटॉन दूरी पर निर्भर करती है. इस प्रकार के प्रयोगों से हम प्रकृति के बृहत् अणुओं की त्रिआयामी संरचना ज्ञात कर सकते हैं. त्रिआयामी संरचना ज्ञात करने की एक और विधि क्ष–किरण क्रिस्टलिकी है. परंतु यह विधि केवल इस प्रकार के अणुओं की मणिभीय अवस्था पर ही प्रयोग में लायी जा सकती है जब कि जीवविज्ञान की सभी क्रियाएं जल माध्यम में होती हैं. इस विषय पर वैज्ञानिकों में काफी मतभेद है कि अणुओं की जो संरचना मणिभीय अवस्था में होती है वही जल माध्यम में रहती है या नहीं.

इस प्रकार के अध्ययनों का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है :– आण्विक जीवविज्ञान में आज एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्रोटीन किस प्रकार न्यूक्लिक एसिड को पहचानते हैं. यह तो आपको ज्ञात ही होगा कि न्यूक्लिक एसिड की वर्णमाला में केवल चार वर्ण हैं–G,C,T, तथा A. जीव रसायन में ऐसी बहुत सी प्रतिक्रियाएं हैं जिनमें प्रोटीन, न्यूक्लिक एसिड द्वारा इन चार वर्णों से रचित शब्दावली पढ़कर

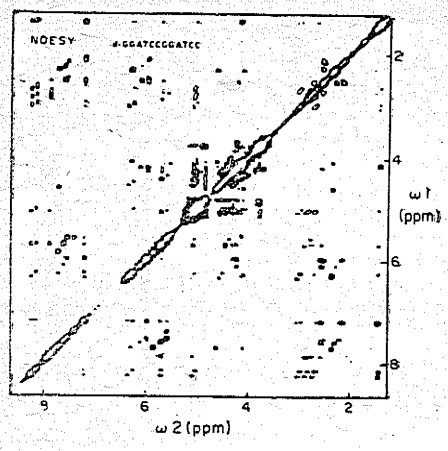

चित्र–4 : न्यूक्लिक एसिड (डी. एन. ए.) की एक शब्दावली GGATCC–GGATCC का द्वि आयामी प्रोटॉन चुंबकीय अनुनाद (प्रोटॉनों का वह जोड़ा जो 5 एंग्स्ट्रॉम से कम दूरी पर होता है. एक व्यतिसह संबंधित संकेत देता है तथा इन संकेतों की तीव्रता से हम अंतर–प्रोटॉन दूरियां माप सकते हैं.)

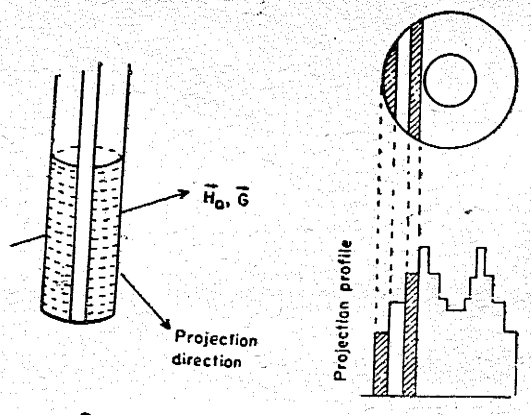

चित्र–5 : पदार्थ (पानी तथा परखनली) की प्रोटॉन चुंबकीय अनुनाद छाया द्वारा त्रियामी संरचना का अध्ययन.

कार्य करते हैं. जैसे कि यदि न्यूक्लिक एसिड के धागे में GGATCC नामक क्रम आता है तो इसको Bam H_1 नामक प्रोटीन बड़ी आसानी से पढ़कर न्यूक्लिक एसिड के धागे को दोनों G के बीच से काट देता है. वास्तव में हमारे प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि इन शब्दों के पहचाने जाने में न्यूक्लिक एसिड की त्रिआयामी संरचना का बहुत महत्व है. इन स्थानों पर डी. एन. ए. की संरचना वाट्सन व क्रिक द्वारा प्रस्तावित डी. एन. ए. से काफी भिन्न होती है. स्पर्श द्वारा प्रोटीन इन परिवर्तनों को अनुभव कर लेते हैं तथा इस प्रकार की शब्दावली को पहचान करके अपना कार्य बहुत ही नियंत्रित ढंग से करते हैं.

अब आण्विक जैविकी को छोड़कर हम अपना ध्यान उस प्रकार के प्रयोगों पर केंद्रित करते हैं जिससे हम किसी भी पदार्थ की त्रिआयामी संरचना का अध्ययन कर सकते हैं. इस प्रकार के उदाहरण का एक बहुत ही उपयोगी पहलू है मानव शरीर के विभिन्न भागों के चित्र लेना. मान लीजिए कि आप एक परखनली में पानी लेते हैं जिसके बीच में कांच की एक और ट्यूब रखी हुई है (चित्र–5). इस प्रयोग में हम ऐसे चुंबकीय क्षेत्र का प्रयोग करेंगे जो कि स्थिर न होकर बायें से दायें तक एक निश्चित गति से बढ़ता है. पानी के अणु में उपस्थित दोनों प्रोटॉन समान हैं तथा एक स्थिर चुंबकीय क्षेत्र में केवल एक ही अनुनाद संकेत मिलता है. चूंकि स्थिति के अनुसार यहां पर चुंबकीय क्षेत्र भिन्न है अतः परखनली के भिन्न–भिन्न भागों से प्राप्त प्रोटॉन के संकेत अलग–अलग आवृत्तियों पर प्राप्त होंगे और इन संकेतों की तीव्रता पानी की मात्रा के अनुसार भिन्न होगी. चूंकि कांच से प्रोटॉन संकेत नहीं मिलते इसलिए हमें चित्र के अनुसार परखनली तथा उसके अंदर उपस्थित पानी की एक छाया सी प्राप्त हो जाती है. इस प्रकार किसी भी पदार्थ की प्रोटॉन चुंबकीय अनुनाद छाया अलग–अलग कोणों से लेकर तथा कम्प्यूटर में इनका विश्लेषण करके हम उस पदार्थ का एक चित्र बना सकते हैं. यह चित्र–6 में स्पष्ट है. मानव शरीर के प्रयोगों में यह आवश्यक है कि एक बहुत ही बृहत् चुंबक प्रयोग में लाया जाये जिसके क्षेत्र में मानव शरीर जा सके. परंतु आण्विक प्रयोगों की तुलना में काफी कम शक्ति (1 – 2 टेसला) के क्षेत्र प्रयुक्त किये जाते हैं.

इस प्रकार की तकनीक ने चिकित्सा जगत में एक हलचल सी मचा दी है. आपने टूटी हुई हड्डियों

के क्ष किरण द्वारा लिये गये चित्र तो देखे ही होंगे. चुंबकीय अनुनाद, क्ष–किरण की भांति शरीर की कोशिकाओं को हानि नहीं पहुंचाता. इसके अतिरिक्त इस तकनीक द्वारा शरीर के मुलायम भागों (हृदय, गुर्दा इत्यादि) के चित्र भी लिये जा सकते हैं. जबकि क्ष–किरण केवल हड्डियों जैसे सख्त स्थानों की ही छाया ले सकती है. मां के गर्भाशय में जन्म से पहले बच्चों की स्थिति देखने में इस तकनीक का विशेष महत्व है, क्योंकि शिशुओं पर क्ष–किरणों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और इस कारण गर्भवती माताओं को क्ष–किरण यंत्रों से दूर रखा जाता है.

अब हम कुछ ऐसे प्रयोगों का भी वर्णन कर सकते हैं जिनमें जीवित कोशिकाओं का स्पेक्ट्रम लिया गया है. इस कार्य के लिए ^{31}P सबसे उपयोगी नाभिक है. शायद आप जानते ही होंगे कि जीव रसायन में फास्फोरस केवल कुछ विशेष अणुओं में ही विद्यमान है. इनमें से कुछ जैसे, ATP, P–cr आदि जीवन के लिए अनिवार्य ऊर्जा प्रदान करते हैं. जीवाणुओं की रासायनिक प्रतिक्रियाओं को परखने के लिए ^{31}P NMR एक बहुत ही ही शक्तिशाली तकनीक है. इस प्रकार के प्रयोग हम कई प्रकार के अनुसंधान में कर सकते हैं. उदाहरण के तौर पर हम हानिकारक जीवाणुओं पर प्रतिजैविकी रसायनों का प्रयोग करके इन रसायनों की शक्ति तथा संवेदनशीलता पर महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं. वास्तव में ऐसे प्रयोग मानव शरीर के कुछ भागों जैसे हृदय पर भी किये जा सकते हैं. ATP के संकेत हृदय के स्वास्थ्य के बारे में बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं.

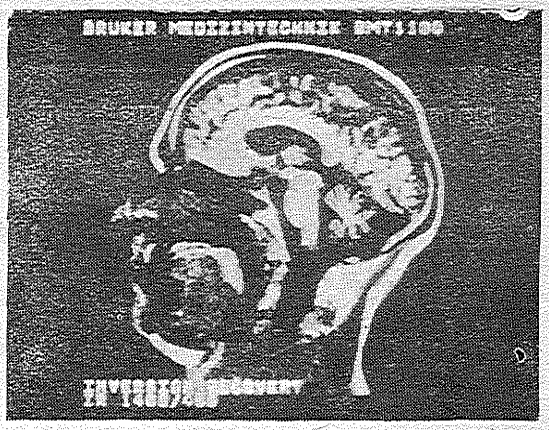

चित्र–6 : मानव के सिर का चुंबकीय अनुनाद द्वारा लिया गया एक चित्र.

पिछले वर्षों में यंत्रों में निरंतर प्रगति, सस्ती दरों पर अधिक शक्तिशाली कम्प्यूटर की उपलब्धि तथा नयी–नयी तकनीकों के आविष्कार के कारण चुंबकीय अनुनाद जीव रसायन में एक बहुत ही शक्तिशाली तकनीक के रूप में उभर रहा है. वह दिन दूर नहीं जब इस तकनीक द्वारा आप स्वयं अपने हृदय की धड़कन अथवा जन्म से पहले मां के गर्भ के बच्चे को खेलते हुए देख सकेंगे.

(इस लेख के चित्र भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की 500 मेगाहर्ट्ज प्रयोगशाला के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं.)

कुछ फूल

'पिछले दिनों वैज्ञानिक का नया अंक देखा. निसंदेह आप इसे बहुत अच्छी तरह प्रकाशित कर रहे हैं.

मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं.

मनोज कुमार पटैरिया
वरिष्ठ संपादन सहायक.
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय,
वै. तथा औ. अ. परिषद, दिल साइड रोड़, नयी दिल्ली–110012

लेख प्रतियोगिता 1984 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

जालों की दुनिया

*

राज कुमार जैन

14, प्रथम क्रास, अन्नायप्पा ब्लॉक, शेषाद्रीपुरम, बैंगलूर 560020.

प्रायः हमारे दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के जाल देखने में आते हैं– जैसे मकड़ी द्वारा घरों में बनाया जाने वाला जाल, मछली पकड़ने का जाल, बैडमिंटन के खेल में प्रयोग किये जाने वाला जाल आदि, आदि. मानव निर्मित जालों का उनकी उपयोगिता के कारण काफी महत्त्व है. क्या हमने कभी सोचा है कि ये जाल किस प्रकार अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करते हैं? इस लेख में विभिन्न प्रकार के जालों की कार्यप्रणाली से संबंधित जानकारी को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया गया है. –सं.

जाल प्रारंभ से ही मानव की कमजोरी सिद्ध हुए हैं, जब कभी भी सीधे रास्ते से काम नहीं बन पाता, मानव जाल बिछाना प्रारंभ कर देता है. छोटी–छोटी सी घटनाएं, किसी बृहद जाल का निर्माण कर सकती हैं, यदि वे किसी क्रम विशेष में घटती हैं. इसी प्रकार जब पतले–पतले रेशों, धागों को किसी क्रम विशेष में बुना जाता है, तो वे भी एक जाल का निर्माण करते हैं. यह जाल शिकार पकड़ने के भी काम आता है और कभी किसी की जान बचाने में भी इसका उपयोग होता है.

घटनाओं के अदृश्य जाल की तो नहीं किंतु पतले–पतले रेशों से बने वास्तविक जाल को फैलाने की शिक्षा, मानव को प्रकृति से ही प्राप्त हुई है. प्रकृति के जिस छोटे से जीव से उसे शिक्षा मिली है, वह है मकड़ी. मकड़ी स्वयं ही रेशों को बनाती है और स्वयं ही इस जाल का अभिकल्पन एवं निर्माण भी करती है. (चित्र–1)

मकड़ी, जाल को बिछाकर, जाल में अपने शिकार के फंसने का इंतजार करती है. यह जाल जब कभी भी किसी उड़ते हुए, छोटे कीड़े, मक्खी आदि को अपने जाल में उलझा लेता है, तो मकड़ी तेजी से आकर, उसे अपना भोजन बना लेती है.

मानव ने पानी के अंदर तैरती मछलियों को पकड़ने के लिए, मकड़ी से ही जाल फैलाने की

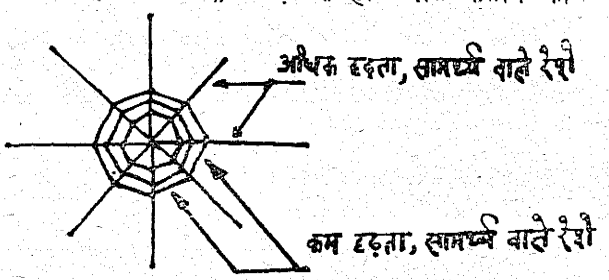

[प्राकृतिक गुरु मकड़ी का जाल]

चित्र-1

शिक्षा पायी है. वायु में उड़ती चिड़ियों, पक्षियों को भी वह लालच दिखलाकर, जमीन पर फैले जाल में फंसाने में सफल हुआ है. जमीन पर विचरण करने वाले जीवों को भी, उसने जाल में फंसाने में सफलता प्राप्त की है. जाल किसे फंसाने के लिए बिछाया जाता है, इस बात पर ही जाल की सामर्थ्य व बनावट निर्भर करती है.

जालों की बनावट :

प्रायः सभी जाल पतले रेशों, धागों के प्रयोग से बनते हैं. ये पतले रेशे, धागे मात्र तनाव बलों को ही सहने योग्य होते हैं. साधारणतया जब बल का विरोध तनाव–प्रतिबल उत्पन्न कर किया जाता है, तो संरचना की क्षमता का उपयोग महत्तम होता है. इस कारण ही दाब बलों को सहने की सामर्थ्य, न होते हुए भी, इनकी उपयोगिता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय है. (चित्र–2)

चित्र - 2

वायु में उड़ती पतंग को, धागे का तनाव ही बांधे रखता है. यह पतंग तभी तक वायु में टिकी रहती है, जब तक कि पतंग पर लगे बल, धागों में तनाव बनाये रखते हैं. (चित्र–3) यदि पतंग पर उड़ान के समय ऐसे बल उत्पन्न हो जाते हैं, जो धागे का तनाव समाप्त कर देते हैं. तो पतंग अपनी स्थिति नहीं बनाये रख पाती. रस्सीवाले झूलों में, झूलने के लिए भी, इसी कारण रस्सी में तनाव बनाये रखना आवश्यक होता है.

ऐसे ही रेशों, धागों और रस्सियों से निर्मित जाल, झिल्लीनुमा संरचनाएं भी किसी बाह्यबल को, अपने अंदर तनाव–विकृति, प्रतिबल उत्पन्न कर ही

[पतंग उड़ने के लिए धागों में तनाव ही आवश्यक है]

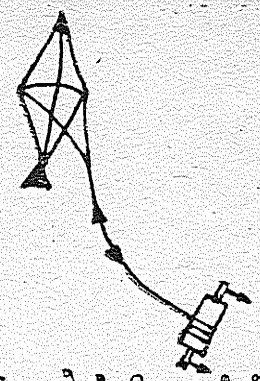

चित्र-3

सहन कर सकती हैं. तनाव–बलों के कारण संरचानाओं में, पदार्थ में तनाव–विकृति, प्रतिबल उत्पन्न होते हैं. इस प्रकार की संरचनाओं में तनाव–दृढ़ता के अलावा, अन्य दृढ़ताओं का अभाव होता है. इस कारण ये संरचनाएं घूर्ण बलों को सहन नहीं कर पातीं. तनाव को छोड़कर अन्य प्रकार के बलों के विरुद्ध, दृढ़ता के अभाव के कारण इन्हें सरलता से लपेटकर, दबाकर रखा जा सकता है. लपेटकर, बंदकर ले जाने की सुविधा के कारण, मानव–निर्मित जालों का निर्माण कहीं भी हो सकता है और किसी भी अन्य स्थान पर, इन्हें सरलता से ले जाया जा सकता है. इसके विपरीत मकड़ी अपने जाले का स्वयं निर्माण करती है और यह निर्माण भी वहीं पर किया जाता है, जहां पर शिकार फंसाना होता है. इस अर्थ में मानव अपने प्राकृतिक गुरू से कहीं बहुत आगे निकल चुका है.

शिकार के आकार और गति के अनुरूप ही जालों में तानों–बानों का निर्माण किया जाता है. जाल का घनापन या बेगरापन, शिकार के आकार और उसकी गति पर भी निर्भर करता है. जाल शिकार को फंसाने में सफल होता है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि फंसानेवाला जाल में कितना उलझता है. इसके बाद भी फंसाने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि जाल शिकार रोकने में पूर्णरूपेण सफल हो सके. इसके लिए जाल के तानों-

बानों में पर्याप्त सामर्थ्य और दृढ़ता के साथ–साथ उसमें शिकार की पूर्ण गतिज ऊर्जा को किसी न किसी रूप में शोषण करने या परिवर्तित करने की सामर्थ्य भी होनी आवश्यक है. साधारणतया यहां शिकार की संपूर्ण ऊर्जा, जाल अपने आपको विकृत कर या तोड़कर ही शोषण करता है. यदि जाल टूट जाता है, शिकार फंसता नहीं है तो जाल फैलाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है.

ऊर्जा परिवर्तन :

मकड़ी के जाल में फंसनेवाला, साधारणतया हल्के भारवाला होता है. प्रायः उसकी उड़ान रफ्तार भी कम होती है. इस कारण शिकार की गतिज ऊर्जा जो उसकी मात्रा को, उसकी गति के वर्ग से गुणा करके और इस प्रकार प्राप्त मान को, आधा करने पर प्राप्त होती है, वह भी कम ही होती है. मकड़ी का जाल, शिकार की इस गतिज ऊर्जा को, अपनी विकृति ऊर्जा में बदलकर, उसे रोकने में सफल हो जाता है. शिकार के स्वयं हाथ–पैर, पंख उसे जाल की बुनाई में उलझाकर फंसा भी देते हैं.

मकड़ी के जाले में आधार दीवाल, पेड़ आदि से जुड़े रेशे, अन्य रेशों की अपेक्षा अधिक सामर्थ्यवाले और दृढ़ होते हैं. ये रेशे शिकार के आघात के कारण उत्पन्न तनाव बलों को अपने आधार को स्थानांतरण कर देते हैं. तानों को जोड़ने वाले बानों की सामर्थ्य और दृढ़ता, तानों की अपेक्षा कहीं कम होती है. ये रेशे कम बलों की उपस्थिति में भी ज्यादा–विकृति उत्पन्न करते हैं. इस प्रकार विकृत होने में, कहीं ज्यादा ऊर्जा का, विकृति–ऊर्जा में परिवर्तन होता है.

साधारणतया स्वभाव से नम्य, लचीले पदार्थ अपनी दृढ़ता के कारण ज्यादा से ज्यादा बिना टूटे विकृत हो जाते हैं. विकृति ऊर्जा, प्रतिबल–विकृति लेखा चित्र से प्राप्त की जा सकती है. विकृति ऊर्जा, लेखा चित्र में विकृति अक्ष और लेखा के बीच के क्षेत्रफल के बराबर होती है, यदि विकृति प्रत्यास्थता की सीमा के भीतर होती है, तो यह लेखा चित्र सीधी रेखा होता है. इस परिस्थिति में यह क्षेत्रफल,

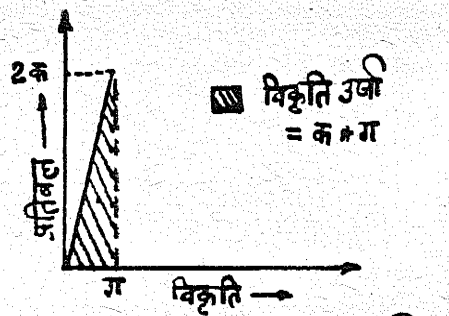

[उच्च दृढ़ता, सामर्थ्य वाला पदार्थ प्रत्यास्थता की सीमा में]

चित्र-4अ

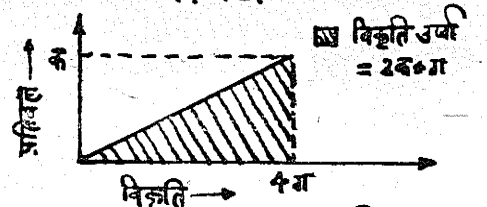

[कम दृढ़ता, सामर्थ्य वाला पदार्थ, प्रत्यास्थता की सीमा में]

चित्र-4ब

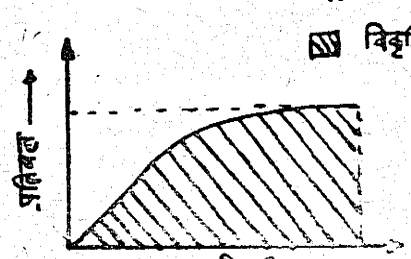

[वास्तविक विकृति ऊर्जा] चित्र-5

प्रतिबल और विकृति के लिए गुणनफल का आधार होती है (चित्र–4, 5). साधारणतया पदार्थ की दृढ़ता बढ़ने पर, पदार्थ कम विकृति पर ही टूटता है. इस प्रकार इस पदार्थ द्वारा, विकृति ऊर्जा के रूप में उपलब्ध ऊर्जा का शोषण बहुत कम होता है. एक ही भार के लिए कम दृढ़ता वाले पदार्थ जैसे रबर, प्लास्टिक, जूट, कपास, नाइलोन आदि द्वारा शोषित विकृति ऊर्जा का मान, अधिक दृढ़ता वाले भंजक पदार्थ जैसे बोरान, कार्बन आदि की अपेक्षा कई गुना अधिक होता है. इस प्रकार ऊर्जा शोषण

की आवश्यकता भी जालों में प्रयुक्त पदार्थ, रेशों के चूनाव को प्रभावित करती है.

पूर्व तनाव और टकराव की दिशा :

मकड़ी के जाले में फंसनेवाले शिकार की दिशा जाल के सापेक्षतः नहीं होती. इस कारण जाल की सामर्थ्य का पूर्ण सदुपयोग नहीं हो पाता. मानव निर्मित जालों में यदि फंसनेवाला शिकार, जाल के मध्य में और जाल के लंबवत टकराता है, तो जाल की क्षमता का श्रेष्ठ उपयोग होता है. जाल के ताने–बाने पूर्णतया और समान रूप से तनाव में आते हैं, इस लिए प्रयास यह रहता है कि, रोकी जाने वाली वस्तु, जालों के मध्य और उसके लंबवत ही उससे टकराये.

जालों में जाल का पूर्व तनाव भी महत्वपूर्ण होता है. यदि जाल एकदम ढीला होता है तो टकरानेवाली वस्तु की दिशा में जाल, विना प्रतिरोध के बढ़ता है और तब तनाव में आकर उसका प्रतिरोध करता है. थोड़ा पूर्व तनाव, वस्तु का प्रतिरोध तो फौरन करता ही है, जाल को अपने पूर्व स्थान पर भी वापिस लाने में सहायक होता है. ज्यादा पूर्वतनाव देने पर जाल में पूर्व तनाव–विकृति ज्यादा हो जाती है. बल लगने पर, विकृति के और अधिक बढ़ जाने से, उसके टूटने की संभावना भी बढ़ जाती है.

एक ढीली चारपाई पर लेटनेवाला व्यक्ति, इसी कारण चारपाई के अंदर घुस–सा जाता है, तब कहीं जाकर रस्सी, निवाड़ वाला जाल उसे रोक पाता है. खींचकर बुनी गयी निवाड़ या रस्सी व्यक्ति के लेटते ही, और ज्यादा तनाव में आ जाती है. इस समय विकृति कम होती है और विस्थापन भी कम होता है, इस कारण व्यक्ति को निवाड़ ऊपर ही रोके रखती है. पूर्व तनाव यदि ज्यादा हो जाता है, तो व्यक्ति के लेटने पर, अत्यधिक बढ़े तनाव और तनाव विकृति के कारण, निवाड़, रस्सी के टूटने का खतरा बढ़ जाता है.

इस प्रकार मानव ने अपनी सुविधा के लिए जिन प्राकृतिक या कृत्रिम रेशों से जालों का निर्माण किया है उनका अभिकल्पन, उनके उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है. जाल बिछाते समय भी शिकार की संभावित दिशा का ध्यान रखा जाता है. इन्हीं सावधानियों पर ही जाल का सही उपयोग निर्भर करता है.

जालों का उपयोग :

मछली, चिड़ियों, जानवरों आदि को पकड़ने फंसाने के अलावा साधारणतया मानव निर्मित जालों का उपयोग, तेजी से आती वस्तु को रोकने में ही किया जाता है. सबसे सरल उपयोग में जाल का प्रयोग, जालीवाले थैले, धागे वाले थैले या कपड़े वाले थैलों में होता है. जूट से बुने बोरे, बोरियां भी इसी श्रेणी में आते हैं. यहां इनमें भरे सामान को गिरने से रोकना ही इनका कार्य होता है.

अन्य घरेलू उपयोग में पलंग, चारपाई पर लेटे व्यक्ति को यही जाल रोके रखता है. आपातकालीन स्थिति में बिछे पलंग या चारपाई पर ऊंचाई से कूदकर बचा जा सकता है, यहां निवाड़ या रस्सी पलंग की पाटी को, और पाटी व पायों के सहारे जमीन, फर्श को, बलों का स्थानांतरण करती है, बेंत से बुनी गयी कुर्सी में बेत भी प्रायः यही कार्य करता है. पलंग, चारपाई पर लगी मच्छरदानी का जाल भी, इस प्रकार बुना जाता है कि मच्छर उसके आर पार नहीं जा पाता. यहां मच्छर की गतिज ऊर्जा इतनी कम होती है कि वह पतले से पतले रेशों द्वारा बुने गये जाल द्वारा भी रोका जा सकता है. मच्छरदानी फटती है, तो अन्य कारणों से मच्छर को रोकने के प्रयास में निश्चित ही ऐसा नहीं होता.

जाल की बढ़ती सघनता, वायु के आवागमन में और जाल के आरपार देखने में व्यवधान उपस्थित करती है, साधारण रूप से प्रयोग में आनेवाले जाल ऐसा कोई व्यवधान उपस्थित नहीं करते.

खेलों की दुनिया में :

प्रायः प्रत्येक खेल में किसी न किसी रूप में इनका प्रयोग होता है. साधारणतया इनका प्रयोग

गेंद को रोकने और उसके साथ-साथ, विरोधी टीमों के बीच पारदर्शकता बनाये रखने में होता है. गेंद के आकार, गति के अनुसार जाल की बनावट में, एक खेल से दूसरे खेल में परिवर्तन होता रहता है, जाल के तानों बानों की सामर्थ्य, दृढ़ता भी आवश्यकतानुसार बदलती रहती है. (चित्र-6).

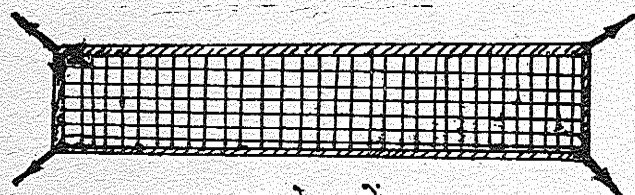

जाल खेलकूद में

[बिना जाल के खेलकूद कैसे ?]

चित्र-6

वॉलीबॉल, बैडमिंटन, टेबल टेनिस सभी में जाल, विरोधी दलों को मात्र विभाजित ही नहीं करता बल्कि गलत गेंद, चिड़िया को रोकने पहचानने में भी सहायता करता है. हॉकी और फुटबॉल में भी जाल के पीछे की तरफ, साधारणतया जाल लगाया जाता है. यह जाल गेंद को मात्र रोकता ही नहीं है बल्कि गेंद गोल में निश्चित रूप से प्रवेश पाती है, इसकी विश्वसनीयता भी सुनिश्चित करता है. क्रिकेट में अभ्यास के दौरान गेंद रोकने के लिए जालों की सहायता ली जाती है.

साधारणतया इन गेंद रूपी प्रक्षेप्यों की गतिज ऊर्जा इतनी कम होती है कि रेशों, तानों-बानों में उत्पन्न विकृति, उनकी प्रत्यास्थता की सीमा में होती है. इस कारण जैसे ही गेंद की गतिज ऊर्जा समाप्त होती है, जाल अपनी पूर्वस्थिति में आने का प्रयास करता है. अपने इस प्रयास में वह गेंद को वापिस भी लौटा देता है, यदि वह जाल में फंस नहीं जाती. यहां बलों का स्थानांतरण भी तनाव के रूप में, किनारों पर लगी पट्टी, रस्सी, रस्सों के सहारे, खंभों और फिर जमीन को होता है. इसके बावजूद भी तानों-बानों का इतना सामर्थ्यवान, दृढ़ होना भी आवश्यक होता है कि वे इस आघात के कारण स्थानीय रूप से टूटकर, गेंद को बाहर नहीं निकल जाने देते.

जालों की इसी रोक सकने की सामर्थ्य का उपयोग आपातकाल की स्थिति में बचाव कार्य के रूप में किया जाता है.

सरकस के मैदान में झूलों पर झूलते कलाकारों की सुरक्षा के लिए नीचे जमीन से कुछ मीटर ऊपर जाल बिछाया जाता है. झूले से जानबूझकर या अनजाने में गिरा कलाकार, जाल के कारण, सीधे जमीन पर गिरकर चोट खाने से बच जाता है. यहां जाल झूले पर करतब दिखाने वाले के पहले ही बिछा दिया जाता है किंतु आपातकालीन स्थिति के उपस्थित होने पर भी जाल बिछाये जाते हैं.

ऊंची अट्टालिकाओं में रहनेवाले, जब किसी कारण से सीधे रास्ते से बाहर नहीं निकल पाते, तो यही जाल उनकी जान बचाता है. जमीन से कुछ ऊंचाई पर जाल बिछाकर, ऐसे फंसे व्यक्तियों को खिड़कियों, छतों आदि से कूदने के लिए कहा जाता है. पहाड़ियों, पेड़ों आदि पर फंसे व्यक्तियों को भी इसी प्रकार बचाया जाता है.

वैमानिकी के क्षेत्र में जहां जमीन से वायु और वायु से जमीन पर बारबार आना आना पड़ता है ये जाल आपातकालीन समय में बड़े सहायक होते हैं.

वैमानिकी के क्षेत्र में :

वायु में उड़ते वायुयानों में कभी न कभी आपातकालीन स्थिति उपस्थित हो ही जाती है. लड़ाकू विमानों में प्रायः चालक अकेला ही होता है. आपातकालीन स्थिति में चालक को बचाने का उपाय, जाल जैसी संरचनाओं द्वारा किया गया है. हवाई-छतरी जिसके सहारे, चालक की गति को बढ़ने से, वायुयान से निकलने के बाद, रोका जाता है. वह इसी प्रकार के रेशों से बनी पट्टियों, रस्सियों

ऑर कपड़े पर आधारित होती हैं. इस हवाई छतरी को अच्छी तरह से लपेटकर, छोटे से छोटे आकार में रखा जाता है. आपातकालीन स्थिति के समय, जब चालक वाययान से कूद जाता है, तो यही छतरी वायु में खुलकर बृहत आकार ले लेती है. यह छतरी इतना कर्षण–बल उत्पन्न करती है कि जमीन की तरफ चालक की गिरने की गति धीमी हो जाती है. इसी प्रकार की छतरी का उपयोग, वायुयान से जमीन पर सामान, सैनिक उतारने में भी किया जाता है. प्रायः इसी प्रकार की कर्षण–छतरी का उपयोग वायुपट्टी पर भी, उतर रहे वायुयान की रफ्तार को तेजी से घटाने के लिए किया जाता है.

इसके बावजूद भी वास्तविक जाल के रूप में वैमानिकी में इनका उपयोग, हल्के चालकरहित, दूर से नियंत्रित वायुयानों (ग्लाइडर्स') के उदय के साथ हुआ है. इन यानों को हल्का बनाने के प्रयास में, ये विमान न तो स्वयं जमीन से उड़कर जाते हैं और न ही इनमें स्वयं वायुपट्टी पर उतरने की क्षमता होती है. इन्हें अन्य यान की सहायता से या प्रक्षेपण कर वायु में भेजा जाता है. उतरने के लिए इन यानों को नियंत्रित कर, चलते–फिरते और कभी पहले से लगाये गये स्थिर जालों की तरफ मोड़ दिया जाता है. ये यान इन जालों में फंसकर रुक जाते हैं.

फंसने वाले यान की गति, भार या कुल गतिज ऊर्जा के आधार पर, इन जालों के तानों–बानों, आधार की सामर्थ्य, दृढ़ता आदि को निर्धारित किया जाता है. यहां यान का रुकना ही नहीं, उसका फंसना भी आवश्यक होता है. इस प्रकार यान के साथ साथ उसके अंदर स्थित यंत्र भी सुरक्षित रूप से, जाल की सहायता से बचा लिये जाते हैं.

उतरते समय कभी–कभी मानव चालित यान, ब्रेक प्रणाली की असफलता के कारण, वायुपट्टी पर अनियंत्रित हो जाते हैं. ऐसे वायुयान निर्धारित लंबाईवाली वायुपट्टियों पर रुक नहीं पाते. यदि वायुयान कम गतिज ऊर्जा वाला है, तो उसे वायुपट्टी के अंत में जाल लगाकर, उसमें फंसाकर रोका जा सकता है.

यहां भी जाल का मुख्य कार्य यान को फंसाना होता है. जाल कि स्थिति इस प्रकार होती है कि यान जाल के प्रायः मध्य में आकर फंस जाता है. जाल की संरचना भी इस प्रकार की होती है कि प्रथम आघात के कारण, जाल के ताने–बाने टूट नहीं जाते. साधारणतया संपूर्ण ऊर्जा का शोषण जाल को, यान की ही दिशा में फंसे हुए, कुछ दूरी तक चलाकर किया जाता है, जाल की गति इस समय, उसके किनारे वाले पट्टों द्वारा नियंत्रित होती है और ये पट्टे किसी ब्रेक प्रणाली के विरूद्ध कार्य कर, ऊर्जा का शोषण, परिवर्तन करते हैं.

इस प्रकार से छोटे, कम गतिज ऊर्जा वाले यानों को रोक सकना प्रायः संभव होता है आवश्यक यह है कि जाल या तो वायु पट्टी के किनारे की तरफ पहले से ही विद्यमान हों या चेतावनी मिलते ही उन्हें खड़ा किया जा सकता है. यान का भार बढ़ने या उनके उड़ने की गति बढ़ने से, यान की गतिज ऊर्जा तेजी से बढ़ती जाती है. ऐसे वायुयानों को रोक सकना प्रायः असंभव सा होता है.

जालों को या इनको बनाने वाले रेशों को यदि थोड़ी सी दृढ़ता, स्थायित्व प्रदान करा दिया जाता है, तो ये पूर्णतयः भिन्न प्रकार की संरचनाओं का निर्माण कर सकते हैं.

रेशे, जाल और स्थायित्व :

जब पतले–पतले रेशों को किसी प्रकार, इस योग्य बना दिया जाता है कि वे तनाव के साथ–साथ दाब बलों को भी सह लेते हैं, तो इनके उपयोग की सीमा बढ़ जाती है. प्रकृति ने रेशों–रेशों को जोड़कर बांस, मांसपेशी, हड्डी जैसी संरचनाओं का निर्माण किया है, मानव ने भी पतले–पतले रेशों को जोड़कर रेशा प्रबलित संरचनाओं का निर्माण किया है. यहां प्लास्टिक जैसे समदिशीय पदार्थों को भिन्न–भिन्न दिशाओं में रेशों से प्रबलित कर दिया जाता है. भिन्न भिन्न दिशाओं में, भिन्न भिन्न प्रकार के गुणों के कारण, ये रेशा प्रबलित पदार्थ, दिशीय पदार्थ बन जाते हैं.

(शेष पृष्ठ 21 पर देखें)

लेख प्रतियोगिता (1984) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

पेट्रोल मितव्ययता के लिए एक नयी इंजन प्रणाली

राजेंद्र कुमार सक्सेना

परियोजना अनुभाग, तकनीकी सेवाएं प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई 400085

वर्तमान ऊर्जा संकट को देखते हुए अधिक क्षमतावाले इंजनों का निर्माण एक सामयिक आवश्यकता है. हालांकि कॉरबोरेटर एक सस्ता, सुलभ एवं कम देख-रेखवाला यंत्र है. परंतु इसकी कार्यप्रणाली की क्षमता अपेक्षाकृत कम है. लेख में कारबोरेटर एवं पेट्रोल दबाव प्रेषण प्रणाली का एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया गया है कि पेट्रोल दबाव-प्रेषण इंजन निसंदेह अधिक क्षमता वाला इंजन है.

आज के युग में ऑटोमोबाइल अभियंताओं का ध्यान अधिक शक्तिशाली और अधिक सिलिंडर वाले इंजनों के निर्माण की ओर लगा हुआ है. फलस्वरूप आज साधारण कॉरबोरेटर अपनी कार्य-पद्धति में अक्षम प्रतीत हो रहे हैं. वैसे यह एक सस्ता, सुलभ एवं कम देखरेख वाला यंत्र है. शायद यही कारण है कि 'मल्टी चोक' के दो या तीन कॉर-बोरेटर वाले इंजनों पर भी कार्य जारी है. एक आवश्यकता यह भी है कि ईंधन का उपयोग कम से कम हो ताकि वातावरण में विषैली एवं हानिकारक गैसों की मात्रा सीमा के भीतर रहे. इसीलिए आज कॉरबॉरेटर यूनिट (दो और तीन कॉरबोरेटर इस्ते-माल करने वाली) की कुल लागत बढ़ गयी है. साथ ही साथ इससे कॉरबोरेटर एवं पेट्रोल दबाव प्रेषण प्रणाली (पेट्रोल इंजेक्शन) सिस्टम के बीच की लागत दूरी कम हुई है. इस लेख में आगे इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार पेट्रोल दबाव-प्रेषण इंजन अधिक शक्ति उत्पादन तथा ईंधन बचत के लिए पूरी तरह से समर्थ है.

हालांकि पेट्रोल दबाव-प्रेषण प्रणाली (पे. द. प्र.) के उपयोग की संभावना अंतर्दहन (इंटरनल कंबशन) इंजन के विकास के समय से ही ज्ञात है, फिर भी इसका उपयोग सीमित ही रहा है. यहां तक कि, आज भी यह प्रयोग केवल रेसिंग कारों (जहां पूर्ण दक्षता आवश्यक होती है) और हवाई जहाजों में (जहां कॉरबोरेटर के ठंडा होने की स्थिति खतरनाक सिद्ध हो सकती है) ही किया जाता है इस प्रणाली का उपयोग साधारण मोटरगाड़ियों में होने का कारण शायद इसकी अधिक कीमत हो सकता है. पे. द. प्रणाली के अनेक लाभ हैं, जैसे ईंधन बचत में वृद्धि तथा शक्ति उत्पादन क्षमता का प्रभावी विकास (अच्छे ईंधन-वायु मिश्रण के कारण). इस प्रणाली के उपयोग से वायु प्रदूषण भी कम ही होता है. ये कारण पे. द. प्रणाली को कॉरबोरेटर प्रणाली की अपेक्षा अधिक आकर्षक बनाते हैं.

पे. द. प्रणाली क्या है ?

इस प्रणाली का उपयोग तीन तरह से किया जा सकता है :-

1. सीधा सिलिंडर दबाव प्रेषण,
2. दहन के पश्चात लगातार दबाव-प्रेषण,
3. बहु-नलिका जेट दबाव-प्रेषण.

कोई भी उपलब्ध व्यवस्था दहन कक्ष (इग्नीशन चैंबर) में ईंधन को सीधे प्रवेश कराने में समर्थ

नहीं है. उपलब्ध पेट्रोल इंजन अधिकतर इस तरह अभिकल्पित किये गये हैं कि वे ईंधन को सीधे थ्रोटल यंत्र या आवक द्वार संचालन यंत्र के बहुत करीब प्रेषित कर सकें. पहले भी डबुल स्ट्रोक या फोर स्ट्रोक इंजनों पर पे. द. प्रणाली को इस्तेमाल किया जा चुका है. इस दिशा में कार्य करनेवाले शोधकर्ताओं में से कुछ नाम इस प्रकार हैं –फरीमेन, क्रॉफ्ट स्कैनफर, लेंज एवं वैनोरेवी, डॉड एवं विसडम आदि. स्कैनफर ने लगभग 25 वर्षों तक जर्मनी में अध्ययन एवं शोधकार्य किया. इस क्षेत्र में अनेक उत्साहवर्धक शोधकार्य हुए हैं.

हाल में विभिन्न कॉरबोरेटर इकाइयों एवं पे. द. प्रणाली की क्षमताओं तथा दक्षताओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक प्रयोग किया गया. एक चार सिलिंडर, चार स्ट्रोक, एक रैखिक इंजन पर (महेंद्रा एंड महेंद्रा जीप इंजन–75 हॉर्स पॉवर), एक खंडीय अधोरेखीय कॉरबोरेटर (सोलेक्स M 34 PBIC) द्वारा प्रयोग का प्रथम चरण संपन्न किया गया. इस चरण में निम्नलिखित चरांक (वेरीएबिल्स) प्राप्त हुए :– 1. वायुमंडलीय तापक्रम. 2. थ्रोटल की स्थिति, 3. कुल भार, 4. गति, 5. स्पार्क समय, 6. नलिका वैक्यूम, 7. उत्सर्जित गैस तापक्रम, 8. प्रशीतन जल तापक्रम, और 9. ईंधन व वायु का अनुपात. इन सभी चरांकों द्वारा अश्व शक्ति (हॉर्स पॉवर), ब्रेक स्पेसिफिक ईंधन व्यय (ईंधन खपत प्रति इकाई अश्व शक्ति प्रति घंटे हेतु), आयतनिक दक्षता, ब्रेक औसत प्रभावी दबाव और ईंधन खपत (मि. लि./मिनट) की मात्रा का मापांक लिया गया. प्रयोग के दूसरे चरण में पे. द. प्रणाली पर प्रयोग किया गया. एक कुगैल फिशर पेट्रोल इंजेक्शन पंप (PL–004) द्वारा पेट्रोल को उसी इंजन में ईंधन आंकन व्यवस्था द्वारा 30 कि. ग्रा. वर्ग सें. मी. के दबाव पर इन्जेक्ट किया गया था. प्रत्येक बाह्य गमन द्वार जो एक पोपट नोजल से संयुक्त होता है, 60 अंश के विस्तार का खोखला शंकुकार ईंधन फुहार प्रदान करता है. ईंधन की संयोजित एवं सीमित मात्रा को दबाव–प्रेषण यंत्र से रैखिक दबाव पर इंजेक्ट किया गया. यह यंत्र इंजन गति पर निर्भर नहीं करता. इसीलिए ईंधन अंकन व्यवस्था की गति इंजन गति से आधी रखना संभव था. प्रत्येक सिलिंडर की पृथक ईंधन व्यवस्था की गयी तथा प्रत्येक को वायु आवक द्वार के समय से संयुक्त रूप से सम्मजित किया गया. इंजन की गति को एक स्ट्रोबोस्कोप की सहायता से नापा गया. एक संकंपित ड्रम की सहायता से वायु का आयतन मापा गया. अग्निकाल (इग्निशन टाइम) की जानकारी एक अग्निकाल सूचक यंत्र से प्राप्त की जाती है साथ ही साथ कॉन्टेक्ट ब्रेकर से संयुक्त क्रेंक कोण की भी जानकारी यह यंत्र देता है. उच्चतम पंप रैक स्थिति तथा थ्रोटल ओपनिंग के बीच स्थापित सामंजस्य की जानकारी पंप से युक्त एक सूचक सुई से मिलती है.

प्रयोग के दौरान जो जानकारी प्राप्त हुई वह कुछ इस प्रकार है :– अधिकतम शक्ति उत्पादन के समय पंप रैक स्थिति तथा थ्रोटल ओपनिंग के बीच सीधा रैखिक अनुपात प्राप्त हुआ. उदाहरण के लिए कॉरबोरेटर की 30 डिग्री थ्रोटर ओपनिंग पर पंप रैक स्थिति लगभग 40 डिग्री प्राप्त होती है. और 50 डिग्री पर वह 60 डिग्री प्राप्त हुई. 50 डिग्री थ्रोटल पर दोनों प्रणालियों में इंजन गति बढ़ाने के साथ विशिष्ट ईंधन खपत और अश्व शक्ति (हॉर्स पॉवर) का बढ़ना करीब एक–सा रहा. अंतर केवल ब्रेक औसत प्रभावी दबाव कम इंजन गति पर पे. द. प्रणाली में अधिक और कॉरबोरेटर प्रणाली में कम ही रहा.

प्रयोग के शेष कारकों को भी इंजन की बढ़ती गति (चक्र प्रति मिनट) के साथ ही परखा गया. थ्रोटल का मान बढ़ने पर (25–90 डिग्री), इंजन गति के साथ ईंधन खपत भी बढ़ती है. एक विशिष्ट इंजन गति एवं पंप रैक स्थिति के लिए ईंधन की मात्रा न्यूनतम प्राप्त हुई. इस कारक के अध्ययन से ईंधन खपत पर पंप रैक स्थिति का प्रभाव एवं इंजन गति में अधिकता का प्रभाव पूर्णतः ज्ञात हुआ. पंप की स्थिर स्थिति के लिए अधिक ईंधन खपत हुई लेकिन इंजन की गति बढ़ने के साथ ईंधन खपत

तालिका – १ :

ब्रेक औसत प्रभावी दबाव, अश्वशक्ति तथा विशिष्ट इंधन खपत की दोनों प्रणालियों में तुलना

थ्रोटल औसत (डिग्री में)	उच्चतम ब्रेक औसत प्रभावी दबाव			उच्चतम अश्वशक्ति			उच्चतम विशिष्ट ईंधन खपत			न्यूनतम विशिष्ट ईंधन खपत		
	कॉरबोरेटर	पेट्रोल दबाव प्रेषण प्रणाली	% कॉरबो. की तुलना में	कॉरबो.	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में	कॉरबो.	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में	कॉरबो.	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में
50°	6.2	7.43	119.8	45.4	48	105.6	0.29 (4035) च/मि	0.27 (4000) च/मि	90.3	0.22 (2050) च/मि	0.22 (2350) च/मि	98.2
80°	7.49	8.07	107.6	59.8	60.8	102.7	0.28 (4100) च/मि	0.26 (4000) च/मि	80.7	0.22 (2250) च/मि	0.22 (2600) च/मि	98.2
90°	7.51	7.98	106.3	60.2	61.3	101.8	0.27 (4000) च/मि	0.27 (4000) च/मि	97.8	0.23 (1950) च/मि	0.22 (2900) च/मि	93.2

तालिका – २ :

दोनों प्रणालियों के लिए नलिका निर्वात, उत्सर्जित गैस तापांक तथा आयतनिक दक्षता की तुलना

थ्रोटल औसत (डिग्री में)	नलिका निर्वात (mm Hg)			उच्चतम उत्सर्जित गैस तापांक (°C)			उच्चतम आयतनिक दक्षता (%)		
	कॉरबोरेटर	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में	कॉरबो.	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में	कॉरबो.	पे.द.प्र.	% कॉरबो. की तुलना में
50°	42 1500 च/मि (उच्च)183 4000 च/मि	29.8 103(उच्च)	70.3 56.3 3000 च/मि 41.8	700	690	98.7	78	85.5	100.5
80°	10.3 1500 च/मि (उच्च)49.7 4000 च/मि	4.3 24	41.8 48.3 3000 च/मि 40.2	745	690	92.7	88	90.1	102.5
90°	8.2 1500 च/मि 44 4000 च/मि	3.3 18.5	40.2 42	720	690	96	89.9	90.1	100.2

में वृद्धि हुई. ऐसा केवल अधिक पंप स्थिति मान पर हुआ. न्यूनतम स्थिति पर यह कम होता है.

प्रयोग के पेट्रोल दबाव प्रेषण प्रणाली वाले चरण में ब्रेक औसत प्रभावी दबाव का मान कॉरबोरेटर प्रणाली के मानों से काफी अधिक प्राप्त हुआ. यह मानांतर न्यूनतम इंजन गति तथा अंशत: थ्रोटल क्रिया पर अधिक मिला. जैसे-जैसे इंजन गति बढ़ने के साथ अधिक थ्रोटल दिया गया यह मानांतर बढ़ता गया. 50 डिग्री थ्रोटल (अथवा 40 डिग्री पंप रैक स्थिति) और 2000 चक्र प्रति मिनट इंजनगति पर यह मानांतर अधिकतम प्राप्त हुआ. एक महत्वपूर्ण जानकारी के रूप में सभी इंजन गतियों पर, चाहें थ्रोटल अंशत: रहा या पूरा, अश्वशक्ति अधिक उत्पादित हुई. विशिष्ट ईंधन खपत का मान कॉरबोरेटर प्रणाली में इंजन गति के परास क्षेत्र के छोटे से भाग को छोड़कर अधिक प्राप्त हुआ. 2200 चक्र प्रति मि. (पूर्ण थ्रोटल) और 2500 चक्र प्रति मिनट (60 डिग्री थ्रोटल स्थिति) की इंजन गतियों पर कॉरबोरेटर प्रणाली की तुलना में यही मान पेट्रोल दबाव-प्रेषण प्रणाली में अधिक प्राप्त हुआ. प्राप्त सभी मानों की तुलना तालिका-1 व 2 में प्रस्तुत की गयी है.

उपर्युक्त कारकों के अलावा भी कुछ अन्य कारकों का भी अध्ययन किया गया जैसे- आयतनिक दक्षता, नलिका निर्वात (वैक्यूम) और दहन पश्चात उत्पन्न (उत्सर्जित) गैसों का तापांक. पेट्रोल दबाव प्रेषण प्रणाली में आयतनिक दक्षकता मान कॉरबोरेटर प्रणाली की अपेक्षा सभी इंजन गतियों पर अधिक मिला. यह मानांतर अंशत: थ्रोटल पर अधिक और पूरे थ्रोटल पर कम था. ऐसा, सूक्ष्म द्वार से आने वाले स्वच्छ ईंधन वायु मिश्रण के अधिक गति अवरोध (पे. द. प्रणाली) के कारण हुआ. इसी कारण ब्रेक औसत प्रभावी दबाव का मानांतर भी अधिक रहा. उत्सर्जित गैसों का तापमान और नलिका निर्वात भी कॉरबोरेटर प्रणाली में पे. द. प्रणाली की अपेक्षा अधिक मिले. यह प्रभाव इसीलिए दिखा क्योंकि कॉरबोरेटर प्रणाली में आवक द्वार व्यवस्था में अधिक गतिरोध होता है. अंतत: स्थिर इंजनगति (4000 चक्र प्रति मिनट) पर कम विशिष्ट ईंधन खपत तथा अधिक आयतनिक दक्षता और अधिक अश्व शक्ति (हॉर्स पॉवर) प्रदर्शित हुई.

मद्रास भारतीय तकनीकी संस्थान में किये गये उपर्उल्लेखित प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला कि चिंगारी दहन इंजन जिसमें पेट्रोल दबाव – प्रेषण प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, अधिक आयतनिक दक्षता के कारण अधिक अश्व शक्ति उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ है. इसकी पृष्ठभूमि में निम्नलिखित कारण हैं :- (अ) इस प्रणाली में बड़ी आवक नलिका का प्रयोग जिसमें कम दबाव हानि होती है, (ब) कॉरबोरेटर दबाव हानि की अनुपस्थिति, (स) नलिका निर्वात का तापमान न बढ़ना तथा (द) विकसित दहन क्षमता. स्पष्टत: पेट्रोल दबाव-प्रेषण प्रणाली ईंधन बचत के लिए एक उपयुक्त साधन कहा जा सकता है.

जालों की दुनिया

कभी-कभी रेशों को चटाई, कपड़े आदि के रूप में बुनकर भी प्रयोग में लाया जाता है. ऐसा करने से इनके उपयोग में सरलता हो जाती है. सामर्थ्यवाले, दृढ़तावाले किंतु हल्के रेशों या रेशों से बने कपड़े, पट्टों से प्रबलित संरचनाओं का उपयोग, वैमानिकी और अंतरिक्ष के क्षेत्र में बहुतायत से होता है. भवन निर्माण में भी, सीमेंट से बनी संरचनाओं को पतले-पतले तारों से बनी जालियों द्वारा प्रबलित किया जाता है.

जाल, रेशों की दृढ़ता बढ़ने पर जाली बन जाते हैं,

(पृष्ठ 17 का शेष भाग)

जो घरों के दरवाजों, खिड़कियों में और कांटेदरा बनाकर घरों, सरहदों की सुरक्षा के काम आती है. इस प्रकार रेशों से बने जाल या जाल जैसी संरचनाएं घरेलू उपयोग से लेकर, खेल के मैदान, वैमानिकी अंतरिक्ष के क्षेत्र में अपनी महत्ता सिद्ध करने में जुटी हैं. अपनी एकमात्र विशेषता के कारण, ये संरचनाएं इतना आगे बढ़ सकी हैं. प्राय: प्रत्येक जीवित संरचना में कम से कम एकाध विशेषता तो होती ही है, जिसका उपयोग कर निश्चित ही, इस जीवन को और अधिक सुंदर बनाया जा सकता है.

आइए, परमाणु के भीतर झांककर देखें

(प्रथम भाग)

*

जनार्दन स्वरूप

स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग, भा. प. अ. कें., बंबई–400085.

1895 से पहले वैज्ञानिकों को यह जानकारी अवश्य थी कि पदार्थ परमाणुओं से निर्मित है परंतु क्या परमाणु का नाभिक भी होता है ? वे इस तथ्य से परिचित नहीं थे. उस समय तक मैक्सवैल ने विद्युत–चुंबकीय विकिरण का तरंग सिद्धांत प्रतिपादित कर दिया था जो आज भी उसी रूप में सत्य है. उसी दौरान अण्वेषित मैंडलीफ की आवर्त तालिका के महत्त्व से भी हम पूर्ण रूप से परिचित हैं ? यह सब ज्ञात हो चुका था परंतु परमाणु की संरचना से हम बिलकुल अनभिज्ञ थे. कालांतर में हुई खोजों तथा उनके इन्टरप्रेटेशन से रसायनज्ञों तथा भौतिकविदों की विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन आया. आज परमाणु संरचना के बारे में हमारा ज्ञान कहां तक पहुंच गया है इसका एक संक्षिप्त एवं सरल विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है । –सं.

धनात्मक आवेशयुक्त नाभिक तथा उसके चारों ओर परिक्रमा करने वाले ऋणात्मक आवेशयुक्त इलेक्ट्रानों के समुच्चय को परमाणु कहते हैं. नाभिक में प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन दोनों होते हैं, जिनके द्रव्यमानों को जोड़कर परमाणु का भार बनता है; इलेक्ट्रानों का भार नगण्य होता है. नाभिक का आवेश उसके प्रोटानों में होता है. किसी परमाणु में प्राटॉनों और इलेक्ट्रॉनों की संख्याएं बराबर होती हैं जिसके कारण कुल मिला कर परमाणु अनावेशित रहता है. किसी तत्व के परमाणु में इलेक्ट्रॉनों या प्रोटॉनो की संख्या से ही उस तत्व की पहचान होती है. न्यूट्रॉन स्वयं अनावेशित कण होते हैं. इसलिए नाभिक में इनकी संख्या के घटने–बढ़ने से मूल तत्व का परमाणु नहीं बदलता है, केवल उस तत्व के समस्थानिक का परमाणु बन जाता है. नाभिक के बाहर स्वतंत्र रहने पर न्यूट्रॉन का इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन में रेडियोसक्रिय क्षय हो जाता है. परंतु इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन मिलकर न्यूट्रॉन नहीं बनाते हैं.

अब से 20–25 वर्ष पहले तक यह समझा जाता था कि जिस प्रकार इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन किसी परमाणु के अवयव होते हैं, उस प्रकार इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के अवयव नहीं होते हैं, और ये पदार्थ के मौलिक कण ही होते हैं. भौतिकविद इस बात को लेकर परेशान रहते थे कि प्रकृति आवेश के प्रति भेदभाव बरतती है, क्योंकि प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन का आवेश समान होते हुए भी प्रोटॉन का द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा लगभग 1800 गुना अधिक होता है. आधुनिक उच्च ऊर्जा अनुसंधानों से यद्यपि यह निश्चित हो गया है कि इलेक्ट्रॉन तो मौलिक कण होता है, परंतु प्रोटॉन अवयवविहीन नहीं होता है; इसके भी अवयव होते हैं जिन्हें 'क्वार्क' कहते हैं (जिनका विवरण लेख के

द्वितीय भाग में दिया जायेगा). फिर भी प्रकृति के भेदभाव बरतनेवाली शिकायत अब दूसरे रूप से सामने आ जाती है. ऐसा लगता है कि मूल प्रकृति असममित ही है. आधुनिक विज्ञान की प्रगति को अच्छी तरह से समझने के लिए, आइए, इस प्रगति के इतिहास पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल लें.

रेडियो सक्रियता :

परमाणु के नाभिक के बारे में तब से सोचा जाना आरंभ हुआ जब से बेक्वेरेल ने वर्ष 1896 में अकस्मात् रेडियो सक्रियता की खोज कर ली और प्रकृति–मानुमति का पिटारा खोल डाला. रेडियो सक्रियता में निकलनेवाली किरणें तीन प्रकार की होती हैं :–(1) अल्फा किरणें, जिनमें घनात्मक आवेशयुक्त हीलियम के नाभिक होते हैं, (2) बीटा किरणें, जिनमें सामान्य इलेक्ट्रॉन ही होते हैं, तथा (3) गामा किरणें, जो अधिक ऊर्जायुक्त विद्युत्चुबकीय किरणें होती हैं.

जिस प्रकार अंधेरे में किसी स्थान के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए हम कोई पत्थर आदि फेंक कर, उसके किसी वस्तु आदि से टकराकर पैदा हुई आवाज को सुनकर, उस स्थान की लंबाई–चौड़ाई या उसमें उपलब्ध वस्तुओं के बारे में पता लगाने का प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार रुदरफोर्ड ने भी परमाणु के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अल्फा किरणों का उपयोग किया. धातु की एक बहुत बारीक झिल्ली पर उन्होंने अल्फा किरणों को डाला और यह समझा कि ये किरणें उस झिल्ली से बिना अधिक रुकावट महसूस किये हुए पार चली जायेंगी, परंतु किरणें उस झिल्ली को पार नहीं कर सकीं. कुछ अल्फा कण परावर्तित होकर लगभग उसी दिशा में लौट आये जिस दिशा से उन्हें झिल्ली पर डाला गया था. इस परिणाम ने रुदरफोर्ड को आश्चर्य-चकित कर दिया. उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी कागज की सतह से टकराकर कोई तोप का गोला वापस लौट आया हो. उन्होंने सोचा कि परमाणु के अंदर अवश्य ही कोई घनावेशयुक्त कठोर वस्तु है जिससे टकराकर अल्फा कण वापस लौट आते हैं. गणित के समीकरणों से उन्होंने वर्ष 1911 में यह सिद्ध कर दिया कि पदार्थ के परमाणु में घनावेशित नाभिक होता है जिसके चारों ओर सौरमंडल में पृथ्वी आदि ग्रहों के अनुरूप ऋणावेशित इलेक्ट्रॉन विद्युत आकर्षी बलों के कारण परिक्रमा करते रहते हैं. नाभिक का आयतन पूरे परमाणु का 10^{-12} भाग ही होता है, और नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन के बीच का स्थान रिक्त होता है.

रूदरफोर्ड द्वारा प्रस्तुत परमाणु के इस चित्र में एक कमी थी. परिक्रमा करनेवाला इलेक्ट्रॉन त्वरित होता है, इसलिए क्लार्क मैक्सवैल के विद्युत्चुंबकीय समीकरणों के अनुसार त्वरित इलेक्ट्रॉन विद्युत्चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित करता हुआ, सर्पिल मार्ग से होकर कुछ ही क्षणों में नाभिक से टकरा जाना चाहिए; इलेक्ट्रॉन को निरंतर नाभिक की परि-क्रमा करते रहने का कोई कारण नहीं बताया गया था.

वर्ष 1913 में नील बोहर ने इस कमी को पूरा करने के लिए थोड़ा सुधार किया. उन्होंने पदार्थ के सबसे हल्के परमाणु, हाइड्रोजन का चित्र बनाते हुए कहा कि इलेक्ट्रॉन के अनगिनत परिक्रमा–पथों में से केवल वही परिक्रमा–पथ संभव हैं जिनमें इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा प्रभावित (क्वांटाइज्ड) होती है. इन प्रमात्रित कक्षाओं में रह कर परिक्रमित इलेक्ट्रॉन विद्युत्चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित नहीं करता है (इसका उन्होंने कोई कारण नहीं बताया). कम ऊर्जावाली प्रमात्रित कक्षा से जब इलेक्ट्रॉन नाभिक से बाहर की ओर रहनेवाली अधिक ऊर्जावाली कक्षा में संक्रमण करता है तो ऊर्जा का अवशोषण करता है और अधिक ऊर्जा से कम ऊर्जा वाली कक्षा में संक्रमण करने पर इलेक्ट्रॉन ऊर्जा का उत्सर्जन विद्युत्चुंबकीय विकिरण के रूप में करता है जो हाइड्रोजन से निकलनेवाले प्रकाश के रूप में हमें दिखायी पड़ता है. पास की दो प्रमात्रित कक्षाओं के बीच इलेक्ट्रॉन के परि-क्रमा–पथ संभव नहीं हैं. हाइड्रोजन के परमाणु के

इस चित्र से बोहर ने हाइड्रोजन से निकलनेवाले प्रकाश के वर्णक्रम को सफलतापूर्वक समझा तो दिया, परंतु इलेक्ट्रॉन की प्रमात्रित कक्षाओं का कोई कारण नहीं बता सके. बोहर के हाइड्रोजन परमाणु के चित्र ने परमाणु के भीतर प्रकाश के मूल स्त्रोत को ढूंढ निकाला. इससे भौतिकी में एक नये युग का शुभारंभ हुआ.

पदार्थ–तरंगें और परमाणु :

वर्ष 1925 में, एक फ्रांसीसी नवयुवक, लुइ द ब्रोगली ने पदार्थ तरंगों के सिद्धांत का प्रादुर्भाव किया. उसका कहना था कि जिस प्रकार किसी तार आदि में स्थिर या अप्रगामी (स्टेशनरी) तरंगें बन कर स्थिर रहती हैं, उसी प्रकार इलेक्ट्रॉन भी अपनी कक्षा में अप्रगामी तरंगों के रूप में स्थित रहता है, और विद्युत्चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित करते हुए नाभिक में घुस नहीं पाता है. इस सिद्धांत के अनुसार कम ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन की तरंग दैर्घ्य अधिक ऊर्जावाले इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा अधिक होगी. इस सिद्धांत में पदार्थ के कणों में तरंग–दैर्घ्य (λ) की गणना करने के लिए एक समीकरण भी दिया गया, $\lambda = h/p$, जिसमें प्लैंक स्थिरांक होता है, और p कण का संवेग होता है. पदार्थ की तरंगों का आवेश से कोई संबंध नहीं होता है. सभी सूक्ष्म–कणों की गति की गणना इस सिद्धांत का उपयोग करके की जा सकती है. यदि हाइड्रोजन के परमाणु की कल्पना की जाये जिसके नाभिक के चारों ओर एक इलेक्ट्रॉन ही परिक्रमा करता है, तो नाभिक से आरंभ करके बाहर की ओर इलेक्ट्रॉन की बोहर कक्षाओं में से सबसे पहली कक्षा (स्थायी कक्षा) वह होगी जिसके परिक्रमा–पथ में इलेक्ट्रॉन की ठीक–ठीक एक तरंग दैर्घ्य आये. अर्थात्, इस पथ के किसी बिंदु से आरंभ करके यदि हम नाभिक की परिक्रमा करने लगें तो हमें इलेक्ट्रॉन की तरंग ऊंची उठती हुई शिखर तक जाती हुई दिखायी देगी, फिर नीचे उतरती हुई निम्नतम स्थान से होकर फिर से ऊंची उठती हुई दिखायी देगी; और जब हम आरंभ के बिंदु पर वापस पहुंचेंगे तो तरंग बिलकुल ठीक उ प्रकार से ऊंची उठती हुई दिखायी देगी जिस प्रक से परिक्रमा आरंभ करते समय दिखायी पड़ी थ इसी प्रकार, इलेक्ट्रॉन की दूसरी कक्षा ठीक ठी दो तरंग–दैर्घ्य के बराबर होती है, और तीस ठीक–ठीक तीन तरंग–दैर्घ्य के बराबर होती इत्यादि. तरंग–दैर्घ्य का जब परिक्रमा प की लंबाई से ठीक–ठीक मेल मिल जाता है तो तरंगें व्यतिकरण में एक दूसरे को प्रबलित करती और इलेक्ट्रॉन बिना विकिरण उत्सर्जन किये अपनी कक्षा में नाभिक की परिक्रमा करत रहता है. यदि कक्षा की लंबाई का मेल तरंग–दैर्घ्य से ठीक–ठीक नहीं हो पाता है, तो ऐसी तरंगें एक–दूसरे को विनाशी व्यतिकरण के कारण नष्ट कर डालती हैं, और इलेक्ट्रॉन का वहां रहना संभव नहीं रह पाता है. इस प्रकार, द ब्रोगली नाम के इस नवयुवक के पदार्थ–तरंगों के सिद्धांत ने न केवल बोहर की निर्विकिरणीय प्रमात्रित कक्षाओं की उपस्थिति को ही भलीभांति समझा दिया वरन बोहर द्वारा प्रतिपादित इन कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन के कोणीय संवेग को भी सैद्धांतिक आधार प्रदान कर दिया गया. इस प्रकार, परमाणु से संबंधित ज्ञान ने परिपूर्णता की ओर एक और महत्वपूर्ण कदम बढ़ा दिया.

सूक्ष्म कणों का द्वैत व्यवहार :

आरंभ में वैज्ञानिकों ने यह मानने से बिलकुल इनकार कर दिया कि पदार्थ के कण तरंगों के रूप में भी समझे जा सकते हैं, परंतु जब डेवीसन और जर्मर नाम के वैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रॉन पुंज को एक बारीक धात्विक झिल्ली से होकर निकाला तो झिल्ली के जालक बिंदुओं से इलेक्ट्रॉनों का उसी प्रकार व्यतिकरण होता हुआ दिखायी पड़ा जिस प्रकार इन बिंदुओं से एक्स–किरणें व्यतिकृत होती हैं. इससे यह प्रायोगिक रूप से सिद्ध हो गया कि इलेक्ट्रॉन स्वयं एक पुंज है, अर्थात पदार्थ के सूक्ष्म कणों के दो रूप होते हैं. किन्हीं परिस्थितियों में पदार्थ–कण तरंगों के रूप में,

तथा किन्हीं में कणों के रूप में व्यवहार करते हैं. इससे वैज्ञानिकों ने पदार्थ–तरंगों को मान्यता प्रदान कर दी, और अब इन्हीं तरंगों पर आधारित गतिकी, प्रमात्रा गतिकी (क्वांटम मैकेनिक्स), सूक्ष्म कणों की गतियों की गणना करने के लिए भौतिकी की सबसे अधिक यथार्थ गणित पद्धति बन गयी है. इसके साथ ही साथ, विद्युत्चुंबकीय विकिरणों पर किये गये अनुसंधानों से भी यह बात स्पष्ट हो गयी है कि विकिरण भी कभी कण (प्रकाशाणु), और कभी पुंज के रूप में व्यवहार करता है. कणों एवं तरंगों के इस दोहरे व्यवहार को द्वैत व्यवहार सिद्धांत कहते हैं.

प्रोटॉन और न्यूट्रॉन :

एक ओर तो सूक्ष्म कणों के बारे में द्वैत व्यवहार सिद्धांत मजबूत किये जा रहे थे, दूसरी ओर रूदरफोर्ड और उनके साथियों ने अल्फा कणों के विभिन्न पदार्थों पर प्रहार के द्वारा परमाणु के नाभिक के संबंध अधिक जानकारी प्राप्त करना जारी रखा. उन्हें ज्ञात हुआ कि नाइट्रोजन तथा अन्य पदार्थों के परमाणु पर अल्फा कणों के प्रहार से हाइड्रोजन का नाभिक प्राप्त होता है, जिस पर इलेक्ट्रॉन के बराबर परंतु धनात्मक आवेश होता है. इसका नाम उन्होंने 'प्रोटॉन' रखा, और प्रस्तावित किया कि परमाणु के नाभिक को प्रोटॉनों द्वारा ही धनावेश प्रदान किया हुआ होता है. चूंकि इलेक्ट्रॉन का भार प्रोटॉन से लगभग 1800 गुना कम होता है, अतः परमाणु का भार प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होना चाहिए. परमाणुओं के भार अन्य रासायनिक पद्धतियों द्वारा निश्चित किये जा चुके थे, और रूदरफोर्ड के प्रस्ताव का उनसे मेल नहीं मिल पाता था. उदाहरणार्थ, नाइट्रोजन का परमाणु–भार 14 निश्चित किया गया था, परंतु उसके नाभिक में केवल 7 प्रोटॉन ही पाये गये. इसी प्रकार, ऑक्सीजन का परमाणु–भार 16 होता है, परंतु उसके नाभिक में केवल 8 प्रोटॉन ही होते हैं. अतः रूदरफोर्ड ने प्रस्ताव रखा कि नाभिक में प्रोटॉन के बराबर भार का परंतु आवेशविहीन कण भी होना चाहिए. जिसकी संख्या परमाणु भार और प्रोटॉनों की संख्या में अंतर के बराबर होनी चाहिए. वर्ष 1932 में रूदरफोर्ड के सहयोगी, चैडविक ने इस आवेशविहीन कण को बेरीलियम के परमाणु पर अल्फा किरणों से प्रहार करके खोज निकाला. इसका नाम 'न्यूट्रॉन' रखा गया.

न्यूट्रॉन ने भौतिकी की दुनिया में तहलका मचा डाला. इसका उपयोग करके परमाणु–बम तथा अन्य परमाणु शस्त्रास्त्र बनाये गये हैं जिन्होंने इस पृथ्वी पर जीवन को ही चुनौती दे रखी है. दूसरी ओर, न्यूट्रॉन के रचनात्मक उपयोग से परमाणु–शक्ति प्राप्त होती है.

आटोहान एवं श्रीमती लिसा मैटनर ने जर्मनी में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने कम ऊर्जावाले न्यूट्रानों को यूरेनियम पर डाला. उन्होंने देखा कि इससे यूरेनियम का भारी परमाणु विखंडित होकर हल्के तत्वों के परमाणुओं में बदल जाता है और साथ ही साथ कम ऊर्जावाले अन्य न्यूट्रॉन भी प्राप्त हो जाते हैं जो यूरेनियम के अन्य परमाणुओं को विखंडित करने की शृंखला आगे चलाते रह सकते हैं. यूरेनियम के परमाणु के विखंडन होने पर बहुत सारी ऊर्जा भी प्राप्त होती है जो नाभिक में नाभिकानों की बंधन ऊर्जा के रूप में संकलित रहती है और विखंडन होने पर मुक्त हो जाती है. अन्य न्यूट्रॉन निकलने के कारण शृंखलाबद्ध प्रक्रिया चलती भी रह सकती है.

बहुत थोड़े समय में बहुत सारी परमाणु ऊर्जा जब मुक्त होती है, तो हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये महाविनाशकारी परमाणु बम बन जाते हैं, और यही ऊर्जा जब नाभिक रिएक्टर से धीरे–धीरे प्राप्त की जाती है तो जीवनोपयोगी बिजली बनायी जा सकती है.

न्यूट्रिनो :

परमाणु के नाभिक के बारे में अल्फा किरणों की सहायता से प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण जानकारी के बाद, आइए अब देखें कि बेक्वेरेल के दूसरे विकिरण बीटा किरणों, के उपयोग से हमारे ज्ञान में क्या वृद्धि हुई? जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बीटा किरणों में सामान्य इलेक्ट्रॉन ही होते हैं. (नाभिक से निकलने के कारण इन्हें बीटा–कण

कहा जाता है.) नाभिक के अंदर उपस्थित न्यूट्रॉन जब प्रोटॉन में परिवर्तित होकर एक नये तत्व का परमाणु बना देता है तो एक इलेक्ट्रॉन बाहर निकल जाता है.

किसी तत्व के नाभिक में से एक बीटा–कण निकलने से उस नाभिक में उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या में एक की वृद्धि हो जाती है, और यह नाभिक आसपास के पदार्थ से एक इलेक्ट्रॉन को परिक्रमा करने के लिए पकड़ कर एक नये तत्व का परमाणु बन जाता है. इस परिवर्तन में आवेश तो अक्षय रहता है, परंतु ऊर्जा और संवेग में अक्षयता नहीं रहती है. प्रयोगों से पता चलता है कि इस परिवर्तन में लगभग 0.8 MeV ऊर्जा अथवा उसके समतुल्य द्रव्यमान का हिसाब नहीं मिलता है. वर्ष 1931 में वु. पॉली ने प्रस्ताव रखा कि न्यूट्रॉन के प्रोटॉन में परिवर्तन में एक अन्य कण का भी उत्सर्जन साथ–साथ होता है जिसका द्रव्यमान बहुत कम, नगण्य होता है और उसमें आवेश भी नहीं होता है. इसका नाम उन्होंने 'न्यूट्रिनो' रखा, और गणित के समीकरणों से सिद्ध कर दिया कि ऊर्जा और संवेग की अक्षयता प्राप्त करने के लिए इस मायावी कण की उपस्थिति अनिवार्य है. (न्यूट्रॉन के क्षय में वास्तव में 'प्रति-न्यूट्रिनो' निकता है)

मौलिक कणों को हम देख नहीं पाते हैं, परंतु पदार्थ से हुई उनकी पारस्परिक क्रिया के प्रभाव को माप कर उन कणों की उपस्थिति तथा उनके गुणों का हम पता लगा लेते हैं. न्यूट्रिनो में न तो आवेश होता है और न उसका द्रव्यमान ही पर्याप्त होता है. अतः पदार्थ से इसकी क्रिया भी बहुत कम होती है. न्यूट्रिनो को पहचानने के प्रयत्न, इस कारण, 25 वर्षों तक असफल होते रहे और तब वर्ष 1956 में एक बड़े नाभिक रिएक्टर से अनगिनत संख्या में निकलनेवाले न्यूट्रिनो पर प्रयोग करके ही उस कण की उपस्थिति की पुष्टि हो सकी. परंतु इसके द्रव्यमान का ठीक–ठीक मापन अब तक भी संभव नहीं हो सका है. यह कण इतना छोटा और उदासीन होता है कि धरातल से आरंभ करके पृथ्वी के केंद्र से होकर दूसरीओ र पृथ्वी भर के पदार्थ से बिना प्रभावित हुए, यह कण सीधा उस पार बाहर निकलसकता है.

न्यूट्रॉन के क्षय में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन के साथ-साथ न्यूट्रानो के भी निलकने के कारण, इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन मिलकर न्यूट्रॉन नहीं बना पाते हैं.

पॉजीट्रॉन :

वर्ष 1928 में, डिराक ने मैक्सवेल के विद्युत्चुंब-कीय समीकरण, आइंस्टीन के सापेक्षिकता सिद्धांत तथा नयी अन्वेषित प्रमात्रा गतिकी को एक साथ मिलाकर एक नये सिद्धांत का प्रादुर्भाव किया, जिसे "प्रमात्रा इलेक्ट्रोगतिकी" कहते हैं. इस सिद्धांत के समीकरणों से विद्युत्चुंबकीय विकिरणों के आवेशित कणों पर पड़नेवाले प्रभाव की सही–सही गणना की जा सकती है. विद्युत्चुंबकीय विकिरणों की उप-स्थिति में इलेक्ट्रॉन की गति का विवेचन करते समय उन्होंने पाया कि सापेक्षिकता के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए, इलेक्ट्रॉन की गति की सही–सही गणना तभी संभव है जब इलेक्ट्रॉन के साथ–साथ इलेक्ट्रॉन के समान द्रव्यमान वाले एक अन्य कण की उपस्थिति को भी मान्यता दी जाये जिस पर धनात्मक आवेश हो. इलेक्ट्रॉन के इस धनात्मक साथी का नाम 'पॉजीट्रान' दिया गया. पॉजीट्रान, इलेक्ट्रॉन के प्रतिपदार्थ का एक उदाहरण है. जहां तक प्राकृतिक बलों का प्रश्न है, प्रतिपदार्थ का व्यवहार पदार्थ जैसा ही होता है. इसे एक प्रकार के प्राकृतिक दर्पण में बने पदार्थ का प्रतिबिंब मान सकते हैं. पदार्थ और प्रतिपदार्थ दोनों एक ही बिंदु पर, एक ही समय में आ जाने पर एक दूसरे का विलोपन कर देते हैं, और उनके द्रव्यमान के समतुल्य ऊर्जा विद्युत्चुंबकीय विकिरण के रूप में परिवर्तित होकर निकल जाती है.

प्रकाशाणु :

जब किसी आवेशित कण को त्वरण प्राप्त होता है तो वह विद्युत्चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित करता है जिन्हें प्रकाशाणुओं की एक शृंखला कहा जा सकता है. प्रकाशाणु इलेक्ट्रॉन को प्रभावित करते हैं. इस प्रकार, प्रमात्रा इलेक्ट्रोगतिकी के अनुसार

प्रकाशाणुओं के उत्सर्जन एवं अवशोषण के द्वारा इलेक्ट्रॉन परस्पर एक–दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, अर्थात् प्रकाशाणु विद्युत्चुंबकीय बलों का वाहक–कण होता है.

हैजिनबर्ग का अनिश्चितता सिद्धांत :

प्लैंक स्थिरांक h, दिक्काल के चार आयामी जगत में ऊर्जा का कण होता है. अतः इससे कम ऊर्जा का आदान– प्रदान संभव नहीं है. इस कारण, ऊर्जा का उत्सर्जन अथवा अवशोषण अविच्छिन्न न होकर विच्छिन्न होता है, और यह h के मान का पूर्णगुणांक, अर्थात् h, 2h, 3h. . . . nh के रूप में ही होता है.

हैजिनबर्ग ने इस विषय पर अधिक गहराई से विचार किया. उन्होंने पाया कि यदि किसी कण की स्थिति और संवेग, दोनों को साथ–साथ मापा जाये तो दोनों में h का मान शून्य न होने के कारण, प्राकृतिक रूप से ही कुछ अनिश्चितताएं रह जाती हैं. इन अनिश्चितताओं का गुनणफल $h/2\pi$ के मान के लगभग होता है. प्रमात्रा गतिकी में अनिश्चितता की दृष्टि से स्थिति (Δx) तथा संवेग (Δp), ये दोनों प्राचल एक ऐसा युगल बनाते हैं कि $\Delta x . \Delta p \sim 2\pi$. समय ($\Delta t$) तथा ऊर्जा ($\Delta E$) में अनिश्चितताएं एक अन्य युगल–प्राचल बनाती हैं इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी विधि से किसी कण की स्थिति बिलकुल यथार्थ रूप से ज्ञात करनी हो, अर्थात् ($\Delta x \sim 0$), तो उसके संवेग के मापन में अनिश्चितता (Δp) इतनी बढ़ जायेगी कि दोनों का गुणनफल $h/2\pi$ के बराबर हो जाये.

स्थिराक, h का मान स्थूल जगत के प्राकृतिक नियमों की मर्यादा का द्योतक होता है. सूक्ष्म जगत के नियमों का औसत ही हम स्थूल जगत में देखते हैं. प्रकृति के नियमों में स्थूल जगत के नियमों के विपरीत यदि कुछ गड़बड़ होती है तो वह h के मान की मर्यादा के भीतर तो संभव है अन्यथा नहीं. उदाहरण के लिए, स्थूल जगत में किसी भी क्रिया में ऊर्जा की अक्षयता बनी रहती है. परंतु, सूक्ष्म जगत में ΔE ऊर्जा, Δt समय के लिए अक्षय नहीं भी हो सकती है, परंतु Δt से अधिक समय में ऊर्जा की अक्षयता सिद्ध हो जानी चाहिए, अन्यथा स्थूल जगत में ऊर्जा की अक्षयता के नियम का उल्लंघन हो जायेगा. जो मान्य नहीं है. स्थिरांक h का मान 6.6×10^{-27} अर्ग–सेकंड होता है.

विटामिन – स्वास्थ्य के लिए रामबाण

*

इकबाल हबीब

जूनियर शोध छात्र, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग वनस्पति विज्ञान विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली.

प्राणी विकास के लिए संतुलित आहार की आवश्यकता आज पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है. विटामिन, संतुलित आहार का एक ऐसा घटक है जिसकी कमी शरीर को रोगग्रस्त कर देती है. इन विटामिनों का ज्ञान हर प्राणी को होना आवश्यक है ताकि हम कुपोषण से बच सकें और स्वस्थ शरीर एवं मस्तिष्क का विकास कर पायें. विटामिनों के विभिन्न प्रकार तथा उनकी कमी से होने वाले कुप्रभावों की जानकारी इस लेख में दी जा रही है. —सं.

स्वस्थ जीवन के लिए कॉर्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण अत्यंत आवश्यक हैं. इसके अतिरिक्त भोजन में अन्य कुछ घटकों का होना स्वास्थ्य के लिए जरूरी है. भोजन में इन सहायक घटकों को विटामिन कहते हैं. शरीर में इनकी सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है.

विटामिन की खोज होप्किन्स ने सन 1906 में की तथा शब्द 'विटामिन' का प्रयोग पहली बार फंक (1912) ने किया. जिन यौगिकों में नाइट्रोजन उपस्थित होती है, विटामिन शब्द उन सभी के लिए प्रयोग किया जाता था. लेकिन वैज्ञानिक खोजों के आधार पर कुछ यौगिकों में नाइट्रोजन उपस्थित नहीं थी फिर भी उन यौगिकों को विटामिन कहा गया. विटामिन, जो वास्तव में संतुलित आहार के अभिन्न घटक हैं हमारे शरीर के उचित विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं. यदि शरीर में किसी विटामिन की कमी हो जाती है तो अनेकों रोग लग जाते हैं. ऐसे रोगों को अल्पपोषी रोग या अभाव रोग कहते हैं.

प्राचीन समय में विटामिनों की रासायनिक संरचनाओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं था इसलिए इन्हें A,B,C,D,E, K आदि नाम से पुकारा जाता था. आज पूर्ण ज्ञान होते हुए भी ये उन्हीं पुराने प्रतीकों से ही जाने जाते हैं. प्राचीन युग से आधुनिक युग तक केवल 30 विटामिनों का पता चला है जिसमें 17 विटामिनों का पूर्ण ज्ञान हो पाया है. जिन्हें पानी एवं वसा में घुलनशील होने के आधार पर दो वर्गों में बांटा गया.

1. **वसा में घुलनशील विटामिन–** ए, डी, ई, और के.

2. **जल में घुलनशील विटामिन–**बी 1, बी 2, बी 3, बी 5, बी 6, बी 12, सी, और फॉलिक एसिड.

विटामिन विभिन्न प्रकार की रचनावाले कार्बनिक यौगिक हैं. इन विटामिनों को कभी कभी **ग्रोथ फैक्टर** भी कहा जाता है क्योंकि यह जिस कोशा में बनते हैं उन्हीं कोशाओं में उत्प्रेरक व नियंत्रण का कार्य करते हैं. जैसे विटामिन बी 1.

विटामिन को हारमोन्स भी कहते हैं. पौधों में विटामिन एन्जाइम तंत्र में भी भाग लेते हैं. विटामिन का संश्लेषण हरे पौधों में होता है.

विटामिन–A:— इसको रासायनिक भाषा में **रटिनोल** या **कनवर्टिड कैरोटीन** कहते हैं. यह जानवरों

के शरीर में, मुख्य रूप से यकृत में निर्मित होता है. वनस्पति विज्ञान की नजर से हरी पत्तियों, पीले रंग के फलों और सब्जियों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है. दूध, मक्खन, पनीर और हैलीबट लिवर तेल में विटामिन–A पाया जाता है. विटामिन–A गरम करने पर आसानी से नष्ट नहीं होता है. हरे पौधों में हरे रंग के अनुपात के हिसाब से विटामिन–A पाया जाता है.

विटामिन–A, इपिथेलिमया ऊतकों को स्वास्थ्य व प्रजनन और दुग्ध स्त्रवण के लिए अति आवश्यक होता है.

विटामिन–A की कमी से निम्न रोग हो जाते हैं:–

(1) जीरोफथालियम (नेत्र रोग)

(2) श्वास नली और आंत भी प्रभावित होती है.

(3) बाल झड़ना.

(4) चमड़ी सूखने लगती है.

(5) रात में ठीक से दिखाई नहीं देता.

(6) इसकी कमी से शरीर में छूत की बीमारियों से बचने की शक्ति भी कम हो जाती है.

विटामिन–A की कमी से ही विश्व के अनेक भागों में अंधेपन का रोग फैला हुआ है. शिशु को विटामिन–A 1500–2500 आई. एन. यू. तथा वयस्क को 5000 आई. एन. यू. की प्रतिदिन आवश्यकता होती है.

विटामिन B कॉम्प्लेक्स:

यह विटामिनों का एक ग्रुप कैप्टन है जो भोजन से प्राप्त होते हैं. इन विटामिनों की कमी उन लोगों में होती है जिनके भोजन में पोषक तत्वों की कमी होती है. इस समूह के मुख्य विटामिन निम्न हैं, जैसे बी 1, बी 2, बी 5, बी 3, बी 6 और बी 12 आदि.

विटामिन–B1– इसको रासायनिक भाषा में **थायमिन** कहते हैं. यह विटामिन खाद्यान्नों, यकृत, हृदय, गुर्दा और सुअर के मांस में पाया जाता है. यह विटामिन शरीर विकास और तंत्रिका तंत्र के कुशल संचालन के लिए अति आवश्यक है. शिशु को 0.2 से 1.1, और वयस्क को 1.1 – 1.5 आई. एन. यू. की आवश्यकता प्रतिदिन होती है.

विटामिन B1 की कमी अधोलिखित कुछ रोगों को जन्म देती है :–

(1) बेरी बेरी रोग.

(2) मनुष्य का ठीक प्रकार से नहीं चल पाना

(3) तांत्रिकातंत्र के ऊतकों का क्षति ग्रस्त होना.

(4) संवेदी तंत्रिकाओं में असंतुलन आना.

(5) हृदय बढ़ जाना

(6) स्त्रियों के शरीर में दूध में अनियमितता आ जाना.

विटामिन–B 2 :– इसका रसायनिक नाम **राइबो फ्लोबिन** है. यह दूध, अंडा, कलेजी, गुर्दा, हरी सब्जियों, अंकुरित बीज और पौष्टिक रोटी में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है. यह मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के साथ–साथ कोशिकाओं के श्वसन के लिए भी आवश्यक है. शिशु को 0.4 मिलीग्राम और वयस्क को 1.7 मि. ग्राम प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है.

विटामिन– B 2 की कमी से कई रोग होते हैं जिसमें से मुख्य यहां दिये जा रहे हैं :–

(1) आंखें लाल हो जाती हैं.

(2) जीभ पर छाले पड़ जाते हैं.

(3) शरीर का विकास रूक जाता है.

(4) त्वचा के रोग हो जाते हैं.

(5) बाल गिरने लगते हैं.

(6) और शरीर में सूजन आ जाती है.

विटामिन– B3 :– इसको पंटोथेनिक एसिड कहते हैं. यह अंडे की जर्दी, गुर्दे की कलेजी, दही, मटर, गेहूं के आटे, चौकर, शंकरकंद, आदि में पाया जाता है. यह लिपिड और वसा उपापचयन, वसीय अम्ल और हीमोग्लोबीन के निर्माण तथा कुछ अमीनो एसिडों को सक्रिय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. बच्चों में इस विटामिन की 0.4 से 1.2 और वयस्कों में 1.3 से 1.7 मिलीग्राम की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है.

विटामिन–बी3 की कमी से निम्नलिखित रोग हो जाते हैं. :–

(1) उदर आंत्रीय रोग हो जाते हैं.

(2) मेरूदंड के क्षय, स्नायुविक विकार हो जाते हैं.

(3) त्वचा रोग हो जाते हैं.

विटमिन– B5 – इसको रासायनिक भाषा में **निकोटिनिक एसिड** या नियासिन कहते हैं. यह मुख्यता सुअर, गाय के मांस, गुर्दे, कलेजी, दही, सोयाबीन, मूंगफली, अंकुरित गेहूं आदि में पाया जाता है. यह हरी सब्जियों व फलों में नहीं पाया जाता. इस विटामिन को पी. पी. नाम से भी पुकारते हैं. बच्चों को 5 से 15 मि. ग्रा. तक और बड़ों को इसके 15 से 18 मिलीग्राम की प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है.

विटामिन B 5 की कमी से होनेवाले कुछ रोग इस प्रकार हैं :–

(1) पेलग्रा रोग हो जाता है.

(2) त्वचा फटने लगती है.

(3) जीभ फट जाती है और साथ–साथ सूजन आ जाती है. इस रोग को ग्लोसाइटिस कहते हैं.

(4) पाचन संबंधी रोग तथा मानसिक स्नायविक विकार उत्पन्न हो जाते हैं.

(5) शरीर की खुली त्वचा खुरदरी और लाल हो जाती है.

(6) मानसिक संतुलन भी बिगड़ जाता है.

विटामिन B 6 :–इस विटामिन को रासायनिक भाषा में पायरोडासिन कहते हैं. यह बीजों, अंकुरित खाद्यान्नों, सूखे मेवे, कलेजी और मांस में प्रचुरता से पाया जाता है. साधारणतया मनुष्यों में इसकी कमी नहीं होती है. किंतु चूहों और कुत्तों के लिए अति आवश्यक है. बच्चों को 0.154 से 12 और वयस्कों को 1.4 से 2.0 मिलीग्राम की प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है.

इसकी कमी से त्वचा संबंधी रोग हो जाते हैं, मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा जीभ पर छाले पड़ जाते हैं.

विटामिन––B12 :– यह रासायनिक भाषा में सायनोकोबालामीन कहलाता है. यह पौधों में अनुपस्थित होता है. किंतु जानवरों के ऊत्तकों में विद्यमान होता है. मछली के यकृत, मांस, गुर्दे, दूध, अंडे की जर्दी आदि में बड़ी मात्रा में पाया जाता है. लाल रक्त कणों (आर. बी. सी.) के निर्माण, न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण और स्वस्थ शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए इसका होना अति आवश्यक है. इसे सायनोकोबालामीन इसलिए कहते हैं क्योंकि इस विटामिन में कोबाल्ट अणु उपस्थित होता है. कुछ लोग इसे **चोलीन** भी कहते हैं. 12 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के शारीरिक विकास के लिए अति आवश्यक है. बच्चों को 1.0 से 4.0 मिलीग्राम तथा बड़ों को 5.0 मिलीग्राम की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है.

विटामिन B12 **की कमी से मनुष्य निम्नलिखित रोगों के शिकार हो सकते हैं. :–**

(1) आंत की शोषक शक्ति पर भी कुप्रभाव पड़ता है.

(2) रक्ताल्पता हो जाती है.

(3) स्नायु संबंधी कोष रोग हो जाता है.

(4) आर. बी. सी. का निर्माण नहीं होता है.

विटामिनC :– यह रासायनिक भाषा में **एस्कार्बिक एसिड** कहलाता है. यह नीबू, टमाटर, हरीमिर्च, गुलाब के फूल, और आंवले में भरपूर मात्रा में पाया जाता है. किंतु मांस, मछली, और दूध में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है. यह विटामिन शरीर में रक्त का निर्माण करने में सहायक है. विटामिन– C आंवला में सबसे अधिक होता है लेकिन गरम करने पर विटामिन नष्ट हो जाता है. इसकी बच्चों को 30 से 40 मिलीग्राम, और वयस्कों के लिए 55 मिलीग्राम प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है. इसकी कमी से 15 से 20 प्रतिशत लोग रोटा रोग से पीड़ित रहते हैं. एस्कार्बिक अम्ल एक बहुहाइड्रिक कीटोनिक अम्ल है.

विटामिन–C की कमी से निम्नलिखित रोग हो जाते हैं :–

(1) सर्दी–जुकाम तथा कैंसर.

(2) रक्त स्त्राव होने लगता है.

(3) त्वचा में स्कर्बी रोग हो जाता है.

(4) घाव आसानी से नहीं भरते हैं.

(5) हड्डियां आसानी से टूट जाती हैं.

(6) इस बीमारी में मसूड़ों से खून निकलने लगता है, दांत गिरने लगते हैं.

(7) शरीर की बनावट बेढंगी हो सकती है.

इस विटामिन की कमी से लगभग 20–30 प्रतिशत लोग पीड़ित हैं.

विटामिन–D :– इसको रासायनिक भाषा में **कैलिसपारोल** कहते हैं. सूर्य के पराबैंगनी प्रकाश के प्रभाव से, शरीर में विटामिन D का निर्माण होता है.

विटामिन–D बनानेवाले रसायन एगोस्टेरोल की उपस्थिति पौधों में भी ज्ञात हो चुकी है. मछलियों के यकृत और आंतों में विटामिन–D प्रचुर मात्रा में पाया जाता है. विटामिन D दूध में भी होता है. बच्चों में इसकी 400 आई. एन. यू. तथा बड़ों में 1500 आई. एन. यू. इसकी आवश्यकता होती है.

विटामिन D– : की कमी से होनेवाले रोग :–

(1) कैल्शियम और फॉस्फेट का क्षय तीव्रता से होना.

(2) बच्चों में हड्डियों का रोग 'रिकेट' होना.

(3) सूखा रोग.

(4) हाथ पैरों का मुड़ना

(5) बच्चों में चिड़चिड़ाहट तथा सुस्ती इत्यादि

विटामिन–E :– इसको **टोकोफेरोल** कहते हैं. यह मुख्य रूप से वनस्पतियों में पाया जाता है. जानवरों में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है. गेहूं के अंकुर, तेल, सोयाबीन, कपास के बीज और तेल, सलाद, सेम में विटामिन–E पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होता है. बच्चों को 5 से 15 आई. एन. यू. तथा वयस्कों को 20 से 25 आई. एन. यू. की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है. यह **प्रजनन विटामिन** भी कहलाता है. यह 200 डि. सें. तक नष्ट नहीं होता. इसकी खोज 1922 में **ईवांस और बिशप** ने की थी.

विटामिन–E की कमी से निम्न रोग उत्पन्न होते हैं :–

(1) नपुंसकता उत्पन्न होना.

(2) जानवरों की मांस पेशियां दुर्बल हो जाना.

(3) प्रजनन शक्ति का क्षीण होना.

विटामिन–K :–इसको रसायनिक भाषा में **एन्टि-हिमोरेजिक** कहते हैं. यह गोभी, सोयाबीन, टमाटर, और पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है. यह दूध में नहीं पाया जाता. शरीर में प्रोथ्रोम्बिन के स्तर को बनाये रखता है और रक्त जमाव में अत्यंत आवश्यक है. इसकी बच्चों को 0.6 से 0.8 मिलीग्राम और वयस्कों को 5 मिलीग्राम प्रति दिन की आवश्यकता होती है.

विटामिन – K की कमी से होनेवाले कुछ रोगों का उल्लेख यहां किया जा रहा है :–

(1) छोटे बच्चों में दुष्प्रभाव दिखाई देते हैं.

(2) पित्त की कमी हो जाती है.

(3) रक्त जमने की शक्ति नष्ट हो जाती है

(4) रक्त का अनियंत्रित स्कंदन होने लगता है.

(5) हिमोरेजिक रोग उत्पन्न हो जाता है.

(6) घाव आसानी से नहीं भरते.

(7) शरीर का विकास ठीक नहीं होता.

विटामिन–PABA :–इसका रसायनिक नाम **पी. एमीनो–बेन्जोइक एसिड** है. यह चावल की भूसी, अंकुरित गेहूं और दूध में मुख्य रूप से पाया जाता है. मानव शरीर के विकास में इसकी निश्चित भूमिका अभी ज्ञात नहीं हो पायी है. सूक्ष्म जीवों की वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है.

विटामिन – पी. ए. बी. ए. की कमी से हमारे शरीर पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं.

(1) बाल असमय में पक जाते हैं.
(2) बाल गिरने लगते हैं.
(3) शरीर का विकास रुक जाता है.

आइनोसिटाल :–इसको **मस्सिल शुगर** भी कहते हैं. ये पेशियों में विद्यमान रहता है. कुछ खाद्यान्नों तथा सेम, नीबू, संतरे में यह **फाइटिन** अर्थात आइनोसिटाल के कैल्शियम और मैग्नीशियम लवणों के रूप में पाया जाता है.

इसकी कमी से चूहे अपने शरीर के रोयें खो बैठते हैं.

फॉलिक एसिड :–इसको **फोलेसिन** भी कहते हैं हरी सब्जियों, गुच्छी, कलेजी, दही, अंडे की जर्दी, आदि इसके प्रमुख स्रोत हैं. यह न्यूक्लिक अम्लों और इरिथोसाइटो के बनाने में सहायक है.

शिशु को 0.05 से 0.30 मिलीग्राम तथा वयस्क को 0.42 मिलीग्राम की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है.

फॉलिक एसिड की कमी से निम्न रोग उत्पन्न होते हैं :–

(1) दौरे पड़ना.
(2) रक्ताल्पता उत्पन्न होना.
(3) चेहरा पीला पड़ना.

विटामिन–H :– इस विटामिन को **वायोटिन** भी कहते हैं. यह यकृत, गुर्दा, दही, अंडा, दूध सूखे फलों और अनाजों में पाया जाता है. मनुष्य में इसकी भूमिका ठीक–ठीक ज्ञात नहीं हो पायी है. इसकी कमी से (1) त्वचा पीली हो जाती है. (2) रक्त में कोलेस्टराल की मात्रा बढ़ जाती है और (3) मांसपेशियों में दर्द होने लगता है.

विटामिन–P :– रासायनिक भाषा में **रंटिन** या **हेस्पेरिडिन** कहते हैं. सर्वप्रथम **पैपरिका** में पाये जाने के कारण इसका नाम विटामिनP पड़ा. वनस्पतियों में यह सदैव विटामिनE के साथ उपस्थित होता है. इसकी उपस्थिति से अन्य विटामिन सक्रिय हो जाते हैं. तथा इसकी कमी से शरीर में :–

(1) स्कर्वी रोग हो जाता है,
(2) त्वचा सूखने लगती है तथा
(3) जीभ लाल हो जाती है.

कोलाइन :–इसे विटामिन B कॉम्प्लेक्स का ही सदस्य समझा जाता है. इसका संश्लेषण पशुओं के शरीर में होता है. यह अंडा, मक्खन, तथा स्नायुक ऊतकों में पाया जाता है.

कोलाइन की कमी से (1) चूहों के यकृत में चर्बी बढ़ जाती है, (2) रक्ताल्पता बढ़ जाती है, एवं (3) प्रोटीन की कमी हो जाती है.

इस प्रकार हम देखते हैं कि विटामिन प्राणियों के विकास तथा उन्हें **रोगमुक्त रखने में महत्वपूर्ण** भूमिका निभाते हैं.

X X

बुद्धि कौशल की परख

इस अंक के प्रश्न टेलिविजन पर दिये गये पिछले अंक के प्रश्नों के पूरक रूप में हैं और इसी बारे में और जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से दिये जा रहे हैं.

1. रंगीन प्रसारणों के लिए कई विधियां विश्व में प्रचलित हैं, भारत ने इनमें से किसे अपनाया है?

(अ) एन. टी. एस. सी., (ब) पी. ए. एल. (पाल), (स) एस. ई. सी. ए. एम. (सीकॉम) (द) प्रथम दो.

2. टेलिटेक्सट सेवा (भारत में इसे इनटेक्स नाम से जाना जायेगा) का आरंभ दिल्ली में 14 नवंबर 1985 से किया जा रहा है. इसे निकट भविष्य में अन्य बड़े नगरों में भी आरंभ किया जायेगा. इसके द्वारा मौसम, ट्रेन आदि के समय और अन्य सामान्य जानकारी टी. वी. दर्शकों को उपलब्ध हो सकेगी. इसके लिए निम्न में से क्या करना होगा ताकि आप इस सेवा का लाभ उठा सकें?

(अ) यदि आपके पास रंगीन टी. वी. है तो कुछ नहीं, (ब) एक विशेष उपकरण (डिकोडर) रंगीन टी. वी. के साथ लगाना होगा,

(स) नया एरियल लगाना होगा,

(द) कुछ व्यक्ति ही इस सेवा का लाभ उठा सकेंगे.

3. रंगीन टी. वी. में रंगों का सही रूप में देखा जा सकना किस कंट्रोल द्वारा नियंत्रित होता है?

(अ) कंट्रास्ट कंट्रोल, (ब) ध्वनि कंट्रोल, (स) क्रोमा कंट्रोल, (द) इंटेसिटी कंट्रोल.

4. रंगीन टी. वी. से निकलने वाली क्ष-किरणें, श्वेत श्याम टी. वी. की अपेक्षा अधिक तीव्र और हानिकारक होती हैं. ये कितनी हानिकारक हो सकती हैं?

(अ) बिलकुल नहीं (ब) सुरक्षा सीमा के अंदर, (स) रंगीन टी. वी. देखना बहुत हानिकारक हो सकता है., (द) टी. वी. विशेष पर निर्भर है.

5. भारत में टी. वी. के तीव्र विकास के लिए इनसैट-1 B उपग्रह को श्रेय दिया जाता है. उपग्रह का योगदान किस प्रकार मिलता है ?

(अ) बिना उपग्रह के देशव्यापी टी. वी. प्रसारण असंभव है,

(ब) उपग्रह एक स्टेशन से प्रसारित कार्यक्रमों को अन्य सभी स्टेशनों को रिले कर सकता है.

(स) उपग्रह ही कार्यक्रमों को सभी स्टेशनों को प्रसारित करता है.

(द) चित्र केवल उपग्रह से ही प्रसारित होते हैं.

6. यदि किसी नगर में टी. वी. के एक से अधिक चैनेल (स्टेशन) हों तो उन सभी को ठीक से देखने के लिए कितने एरियल लगाने होते हैं.

(अ) जितने चैनल हों उतने एरियल, (ब) एक सबसे बड़े आकार का, (स) एक सबसे छोटे आकार का, (द) कोई एक.

7. रंगीन टी. वी. की किसी एक चैनल पर रंगीन प्रसारण यदि श्वेत-श्याम दिखे तो उसका कारण (यदि टी. वी. ठीक है) निम्न हो सकता है.

(अ) टी. वी. स्टेशन का अधिक दूर होना, (ब) एरियल का कमजोर होना, (स) स्टेशन से प्राप्त सिग्नल का कमजोर होना, (द) उपरोक्त सभी.

8. रेडियो की अपेक्षा टी. वी. में आवाज अधिक साफ सुनाई देती हैं और मौसम का असर और अन्य शोर नहीं सुनाई देता. इसका कारण टी. वी. में ध्वनि प्रसारण के लिए निम्न का प्रयोग किया जाना है :-

(अ) शक्तिशाली ट्रांसमीटर, (ब) अच्छे उपकरणों का प्रयोग, (स) ध्वनि प्रसारण के लिए ए. एम. प्रणाली का प्रयोग, (द) ध्वनि प्रसारण के लिए एफ. एम. प्रणाली का प्रयोग.

(शेष पृष्ठ 46 पर देखें)

पेनिसिलीन

डॉ. अशोक कुमार गोस्वामी

प्रवक्ता, रसायन विभाग, किशोरी रमण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राधा रमण स्ट्रीट, वृंदावन, 281121

पेनिसिलीन एक प्रतिजीवी (एंटीबायटिक) औषधि है. पेनिसिलीन की खोज तथा उसके द्वारा उपचारार्थ आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है. यदि यह कहा जाये कि आज के युग को वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी एक महत्त्वपूर्ण देन पेनिसिलीन है तो गलत नहीं होगा. इस औषधि के आविष्कार से पहले जो अनेक रोग असाध्य समझे जाते थे वे इससे सुसाध्य हो गये हैं.

पेनिसिलीन की खोज की कहानी :

पेनिसिलीन की खोज की कहानी रुचिकर तथा एक संयोगमात्र है. उस कहानी का प्रारंभ सितंबर 1928 में हुआ. इस घटना का संबंध लंदन के सेंट मेरी अस्पताल के अंग्रेज वैज्ञानिक सर एलेक्जेंडर फ्लेमिंग के साथ है. फ्लेमिंग अपनी प्रयोगशाला में कुछ पेट्री डिशों में फोड़े तथा कुछ अन्य चर्म रोगों को उत्पन्न करनेवाले बैक्टीरिया स्टेफिलोकोकस का अध्ययन कर रहे थे. एक दिन उन्होंने देखा कि एक प्लेट दूषित हो गयी थी क्योंकि उसमें एक हरी फफूंदी उत्पन्न हो गयी थी. उन्होंने यह भी देखा कि जहां फफूंदी उत्पन्न हुई थी उस स्थान पर तथा उसके आस-पास न सिर्फ जीवाणुओं की वृद्धि रुक गयी थी बल्कि ये जीवाणु नष्ट भी हो गये थे. इससे फ्लेमिंग ने अनुभव किया कि इस फफूंदी में अवश्य कोई ऐसा पदार्थ है जिसने जीवाणुओं को नष्ट कर दिया. इस बात का ज्ञान अनायास एवं अनजाने तौर पर हुआ था तथा इस दिशा में भावी खोज की राह स्पष्ट हो गयी थी. फ्लेमिंग ने इस फफूंदी के जीवाणुओं (स्पोर्स) को दूसरी प्लेट में स्थानांतरित किया. जब यह फफूंदी पूरी तरह उग आयी तब उसमें स्टेफिलोकाई जीवाणु डाले. फ्लेमिंग को प्रत्येक प्रयोग में पूर्व परिणाम प्राप्त हुआ. सभी प्रयोगों में फफूंदी ने जीवाणुओं को नष्ट कर दिया. फ्लेमिंग ने इस फफूंदी से एक संदमक पदार्थ तैयार किया जिसका नाम पेनिसिलीन रखा क्योंकि यह फफूंदी 'पेनिसिलीयम नोटेटम' थी. अंत में 1941 हॉवर्ड फ्लोरी ने शुद्ध पेनिसिलीन प्राप्त की तथा इसका परीक्षण रोगियों पर सफलतापूर्वक किया.

संरचना :

पेनिसिलीन कोई एक निश्चित पदार्थ नहीं है बल्कि यह यौगिकों का समूह है जिसमें मूल रिंग संरचना एक सी होती है लेकिन साइड चेन्स अलग-अलग होती हैं.

उत्पादन :

पेनिसिलीन के व्यापारिक उत्पादन के लिए पेनिसिलीन फफूंदी को समज्जित संवर्ध किण्वन (सबमर्ज्ड कल्चर फर्मेन्टेशन) उगाया जाता है. यह किण्वन एक सीधे बेलनाकार टैंक में किया जाता है जिसकी क्षमता लगभग 1,20,000 लिटर होती है. इस टैंक में एक विलोडक तथा ऑक्सीजन प्रवाहित करने के लिए पाइप होता है. इस टैंक में संवर्ध लेते हैं जिसमें कार्नस्टीप द्रव, ग्लूकोज होता है तथा इसका पीएच 6.5 से 7 तक समायोजित कर लेते हैं. चूंकि कुछ जीवाणु पेनिसिलिनेज नामक इन्जाइम उत्पन्न करते हैं जोकि पेनिसिलीन को नष्ट कर देते हैं अतः किण्वन पूर्णतः निर्जीवाणु (स्टराई) अवस्था में किया जाता है. किण्वन के पूर्ण होने में 3 दिन लगते हैं. किण्वन के उपरांत इसे छान लेते हैं तथा संवर्ध से द्रव अलग कर लेते हैं. द्रव को अम्लीय

करके पेनिसिलीन को कार्बनिक विलायकों द्वारा निष्कर्षित कर लेते हैं.

पेनिसिलीन का कार्य :

पेनिसिलीन अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं पर प्रभाव डालती है. निमोनिया, डिप्थीरिया, गोनोरिया, सिफलिस, मेनिन्जायटिस, टिटनेस, गैस गैंगरीन, फोड़े-फुन्सी, नाक, कान, गले तथा मूत्र संस्थान के कुछ रोगों में पेनिसिलीन का प्रयोग लाभदायक होता है. इससे प्रभावित होनेवाले जीवाणु स्टेफ्लोकक्स औरस, स्टेफ्लोकक्स इपिडरमिस, स्ट्रेप्टोकोकस होमोलिटिक, स्ट्रेप्टोकोकसविरिडेन्स, न्यूमोकक्स, गोनोकक्स, मेनिजोकक्स, माइक्रोबेक्टीरियम केटरलिस, बेसिलस एन्थ्रेसिस, कोरिनेक्टीरियम डिप्थीरिया, एक्टीनोमाइसिस, बैसिलस टिटेनी, वेलची सेप्टिक, एडिमा आदि. कुछ जीवाणु पेनिसिलीनेज नामक एक एन्जाइम उत्पन्न करते हैं. जो पेनिसिलिन के प्रभाव को नष्ट कर देता है. इसके उदाहरण ईश-कोलाइ तथा ग्राम ऋणात्मक लालनिरपेक्षी जीवाणु (ग्राम नेगेटिव एनएयेरोबिक बैक्टीरिया) हैं. इस कारण पेनिसिलीन इन जीवाणुओं से युक्त संक्रमणों में प्रभावशाली नहीं है. अतः यह ग्राम ऋणात्मक जीवा-णुओं, स्यूडोमोनस पायोसायनियस, प्रो. बल्गेरिस तथा माइको बैक्टीरियम ट्यूबर्क्यूलोसिस को प्रभावित नहीं करता है. इसलिए इन रोगों पर इसका प्रयोग व्यर्थ है. शल्यक्रिया के बाद रोगियों में स्टेफाइलो-कोकस के पेनिसिलीन प्रतिरोधी विभेदों के कारण संक्रमण की समस्या एक चिंताजनक विषय है.

पेनिसिलीन का प्रयोग मुख्यतः इन्जेक्शन के द्वारा होता है. शरीर के रक्त में इसका शीघ्रता से शोषण हो जाता है जिससे यह औषधि शरीर के विभिन्न भागों में आसानी से पहुंच जाती है. औषधि का उत्सर्ग पूरी तरह से मूत्र द्वारा होता है तथा उत्सर्ग भी उतनी शीघ्रता से होता है जितनी तेजी से इसका शोषण होता है. इसी कारण रक्त में औषधि का स्तर बनाये रखने के लिए इसकी मात्रा भी शीघ्र देने की आवश्यकता होती है.

पेनिसिलीन की विषाक्तता :

पेनिसिलीन एक उत्तम श्रेणी की लाभप्रद औषधि है किंतु यह जीवनदायनी औषधि कभी-कभी साधारण विषमताएं उत्पन्न करने के अतिरिक्त जानलेवा भी सिद्ध हो सकती है. विषमताएं साधारणतया तीन प्रकार की होती हैं. पहले प्रकार में साधारण एलर्जी जैसी प्रतिक्रिया होती है जो औषधि देने के कई दिनों बाद दिखाई देती है. इसमें हल्की तथा बड़ी पित्ती (यूर्टिकेरिया) लाल दाने, खुजली, जी मिचलाना आदि होता है. दूसरे प्रकार की प्रतिक्रिया पेनिसिलीन देने के 1 से 48 घंटों में होती है. जिसमें पित्ती, दम घुटना एवं सांस फूलना आदि होता है. तीसरी प्रकार की प्रतिक्रिया पेनिसिलीन देने के तुरंत बाद होती है जिसे 'ऐनाफिलेक्टिक-शॉक' कहते हैं. इससे कई बार रोगी की मृत्यु भी हो जाती है. इसमें सांस लेने में परेशानी, खुजली, अचानक रक्तचाप में कमी, मंद हृदय गति, शरीर का नीला पड़ना, मूर्छा तथा छाती में तीव्र पीड़ा होती है. इसमें रोगी की मृत्यु कुछ मिनिट से लेकर कुछ घंटों में हो जाती है. तथा कभी-कभी रोगी ठीक भी हो जाता है. इस तरह के शॉक का प्रतिशत पेनिसिलीन लेनेवाले रोगियों में 0.015-0.040 है. इस प्रकार की प्रतिक्रिया पेनिसिलीन के विभिन्न योगों, मुख द्वारा ली गयी पेनिसिलीन टेबलेट तथा यहां तक कि परीक्षा मात्र में दी गयी एवं पेनिसिलीन की अल्प मात्रा से भी हो जाती है. इस प्रकार के शॉक उत्पन्न होते ही रोगी को एड्रेनलिन 0.5 - 1 मि.लि. विलयन का अंतःपेशी इंजेक्शन किसी योग्य चिकित्सक द्वारा तुरंत ही दिलवाना चाहिए.

खेती में उपयोगी शैवालीय खादें

* डॉ. उमेश पांडेय
प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान, बरेली कालेज, बरेली.

वर्तमान समय में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का बहुत बड़ी मात्रा में उपयोग हो रहा है. ये उर्वरक, विशेष रूप से नाइट्रोजन उर्वरक आमतौर पर पेट्रोलियम खनिज से बनाये जाते हैं. विश्व में नाइट्रोजन उर्वरक बनाने के लगभग 600 कारखाने हैं. इनमें लगभग 20 लाख बैरल पेट्रोलियम प्रतिदिन खर्च होता है. हमारे देश में भी पेट्रोलियम की काफी अधिक मात्रा इन रासायनिक उर्वरकों के कारखानों में उपयोग की जा रही है. उर्वरकों के निरंतर बढ़ते हुए मूल्यों ने विशेष रूप से लघु तथा सीमांत कृषकों को विवश कर दिया है कि वे इनका या तो उपयोग ही न करें या न्यूनतम मात्रा में करें. भारतीय कृषि विज्ञानी डॉ. नीलरत्न धर का मत है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भूमि की दीर्घकालीन उर्वरता के लिए घातक सिद्ध हो सकता है. इस दृष्टि से हमारे वैज्ञानिकों ने रासायनिक उर्वरकों के विकास की खोज आरंभ की और परिणाम आज हमारे सामने "शैवालीय खादों" के रूप में मौजूद हैं. शैवाल-आधारित खादें न केवल सस्ती और अधिक प्रभावशाली हैं, वरन् अकार्बनिक उर्वरकों से होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण से भी मुक्त हैं.

भारत की जनसंख्या वर्ष 1947 में 36 करोड़ थी, जो अब बढ़कर 70 करोड़ तक पहुंच गयी है और यह लगभग एक करोड़ प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है. उधर विश्व में पेट्रोलियम खनिज के भंडार काफी सीमित हैं. इसलिए हम अपनी कृषि उपज को बढ़ाने के लिए बहुत समय तक पेट्रोलियम खनिजों पर निर्भर नहीं रह सकते. हमें इसका कोई न कोई ऐसा विकल्प खोजना ही होगा, जिसकी अकूत मात्रा प्रतिवर्ष हम प्रकृति से प्राप्त कर सकें और यह बात शैवालीय खादों पर पूरी तरह खरी उतरती है. इस दृष्टि से शैवालीय खादें आगामी युग में प्रमुख उर्वरक स्रोत सिद्ध हो सकेंगी.

शैवालीय खादों में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख प्रजातियां

1. आलुसिरा फर्टीलिसमा, 2. एनाबीना एबिगुआ, 3. सिलिंड्रोस्पर्मम मेजस

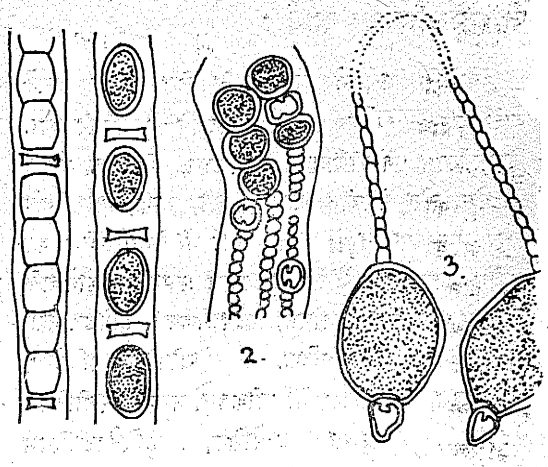

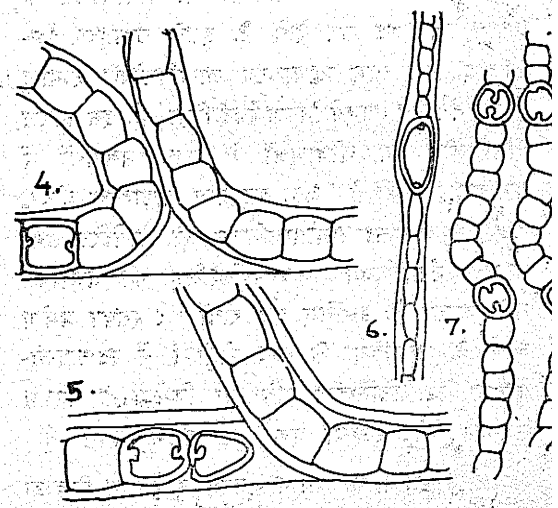

4. लाइटोनीमा बोहनिराई, 5. टॉलीपोथ्रिक्स टेनुइस, 6. आलुसिरा प्रोलिफिका 7. नोस्टॉक कम्यूनी

आज से लगभग 45 वर्ष पूर्व देश के कृषि वैज्ञानिकों ने एक अद्भुत खोज की थी कि उन खेतों

में जिनमें नील–हरित शैवाल बड़ी मात्रा में उगती है. लगातार धान उगाने में भी खाद की कोई आवश्यकता नहीं होती. परीक्षण प्रयोगों से पता चला है कि शैवाल की ये उपजातियां वायुमंडल से नाइट्रोजन लेकर पौधों को प्रदान करती हैं. नील–हरित शैवाल, अन्य वनस्पतियों की तरह कार्बनिक पदार्थ जैसे–पादप हार्मोन स्त्रावित करती हैं तथा उनकी पैदावार बढ़ाती हैं. यदि बीजों को काई के साथ मिलाकर बोया जाये तो वे अपेक्षाकृत जल्दी अंकुरित होते हैं और उनकी वृद्धि भी बेहतर होती है. धान के खेतों में शैवालों का कल्चर अत्यंत महत्त्वपूर्ण, सरल एवं सस्ता नाइट्रोजन उर्वरक है. उससे 25–30 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकती है.

शैवालों से जैव उर्वरक :

नाइट्रोजन उर्वरक तैयार करने के लिए नील-हरित शैवालों की कुछ उपजातियां जैसे– **आलोसायरा, हैप्लोसाइफन, नोस्टॉक, एनाबीना, साइटोनीमा, गिलओकैप्सा, लिंबिया, ओसिलेटोरिया, माइक्रोसिस्टिस** आदि, प्रयोग में लायी जाती हैं. आमतौर से इन उपजातियों के विभिन्न मिश्रण इस्तेमाल किये जाते हैं. किसानों की सुविधा के लिए आजकल ये मिश्रण कृषि प्रशिक्षण केंद्रों और भारतीय कृषि अनुसंधानशाला (पूसा इन्स्टिट्यूट) नयी दिल्ली में बिक्री हेतु उपलब्ध हैं.

शैवालीय खाद कैसे बनायें ?

शैवाल से खाद बनाने के लिए उपयुक्त समय अप्रैल से जून तक का है. खाद बनाने हेतु स्थान के चुनाव में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वहां सूर्य की रोशनी और वायु का अभाव (कमी) न हो. इसके लिए पहले 20 वर्गमीटर की क्यारी बनाकर उसके ऊपर 15 से. मी. ऊंची मेड़ बनाकर समतल कर लेते हैं. अब 5.5 मी. लंबी व 4.5 मीटर चौड़ी पॉलीथीन की चादर से क्यारी को पूरी तरह से ढक लेते हैं. और मेड़ के बाहर भी आधा मीटर पॉलीथान की चादर लटकती रहती है. इस तरह 10 सें. मी. मेड़ चारों तरफ से बना लेते हैं. क्यारी में 40 कि. ग्रा. भुरभुरी मिट्टी बिछा लेते हैं. यह क्यारी अब खाद बनाने के लिए तैयार है.

पहले क्यारी में 10–12 सें. मी. ऊंचाई तक पानी भरकर 1 कि. ग्रा. सुपर फॉस्फेट, 100 ग्राम कार्बोफ्यूरान दाने अथवा 100 ग्राम (10 प्रतिशत) पी. एच. सी. चूर्ण और 2 कि. ग्रा. लकड़ी का बुरादा मिलाकर क्यारी में छिड़क देते हैं. अंत में इस प्रकार 2.5 कि. ग्रा. नील–हरित शैवाल का मिश्रण छिड़क देते हैं.

क्यारी में समय–समय पर पानी भरना जरूरी होता है जिससे पानी की सतह 5 सें. मी. ऊंची बनी रहे. 10 – 15 दिनों में ही शैवाल अच्छी तरह उग आती है. 3 – 4 दिनों के बाद उस को खुरपी द्वारा आधा सें. मी. की गहराई तक खुरच लेते हैं. नमी के कारण वह अपने आप ही उखड़ जाती है.

अब उसे धूप में बालू के साथ मिलाकर सुखा लिया जाता है. सूखी शैवाल को खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है. यदि तुरंत उपयोग नहीं करना है तो उसे पॉलीथीन की थैली में भरकर भविष्य में प्रयोग हेतु सूखी जगह में भंडारित कर दिया जाता है. भंडारण में उसे अन्य उर्वरकों तथा रासायनिक पदार्थों से अलग रखना चाहिए.

उक्त विधि से 20 वर्गमीटर की एक क्यारी से लगभग 35 कि. ग्रा. खाद प्राप्त हो जाती है जो 3 हेक्टेयर खेत के लिए पर्याप्त होती है. एक मौसम में एक ही क्यारी से खाद की 4 फसलें आसानी से तैयार की जा सकती हैं.

उपरोक्त खाद को धान के खेत में डालने के लिए धान की रोपाई तक इंतजार करना पड़ता है. रोपाई हो जाने के 5 दिन के बाद जब खेत में करीब 5 सें. मी. ऊंचा पानी हो तब यह खाद छिड़क दी जाती है. यह मात्रा 9 – 10 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से होनी चाहिए. छिड़काव के बाद खेत में 10 दिन तक पानी भरा रहना चाहिए क्योंकि मिट्टी जितनी अधिक गीली होगी शैवाल उतनी ही तेजी से वृद्धि करेगी.

समुद्री शैवालों का उपयोग भी उर्वरकों के रूप में किया जाता है. अनेक देशों, मुख्यतः फ्रान्स व स्काटलैंड में, इसका उपयोग काफी समय से हो रहा है. समुद्री शैवालों को ताजा या कंपोस्ट बनाकर, प्रयोग में लाया जाता है. वर्तमान समय में इन शैवालों को 'द्रव सत' में परिवर्तित करके "मैक्सी क्रॉप" के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है. परीक्षण प्रयोगों से पता चला है कि 'मैक्सी-क्रॉप' के उपयोग से बीज जल्दी अंकुरित होते हैं. पैदावार अधिक होती है और पौधों में कीड़े कम लगते हैं.

द्रव सत बनाने के लिए शैवालों का क्षारीय जल विघटन द्वारा एक निश्चित दाब पर द्रवीकरण किया जाता है. द्रव के अत्यंत तनु विलयन (1/500) का उपयोग रासायनिक उर्वरक के रूप में किया जाता है.

आजकाल शैवालनिसार (एल्गल एक्सट्रैक्ट) धान की खेती के अतिरिक्त अन्य फसलों में भी लाभकारी सिद्ध हुआ है. परीक्षणों से पता चला है कि जब गेहूं की कुछ किस्मों को, जैसे K-65, K-68, सोनारा-64, आदि को शैवाल निसार के साथ बोया जाता है तो पैदावार में वृद्धि होती है. इसी प्रकार मटर की कुछ किस्मों (T-6408; T-6418 व T-6118) में भी शैवाल निसार के उपयोग के लाभकारी परिणाम मिले हैं.

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1985

प्रथम पुरस्कार (500 रु.) : 'यंत्र मानविकी (रोबोटिक्स) मूल तत्व और प्रयोग'
– अरविंद कुमार जोशी, हरिद्वार.

द्वितीय पुरस्कार (250 रु.) : 'रासायनिक प्रयोगशाला में अपनी सुरक्षा' – डॉ. देवकीनंदन, बंबई.

तृतीय पुरस्कार (150 रु.) : 'क्वार्कों की अनोखी दुनिया' – आशुतोष मिश्र, इलाहाबाद.

प्रोत्साहन पुरस्कार (75 रु. प्रत्येक)

1. 'संचार : वर्तमान और भविष्य' – कु. सुनीला श्रीवास्तव, जबलपुर.
2. 'व्यावहारिक विज्ञान' – कु. अश्विता सुरेन, जमशेदपुर.
3. 'प्रकाश एक अवस्था' – नागेश कुमार श्रीवास्तव, शहपुरा (म. प्र.)

विशेष प्रोत्साहन पुरस्कार (अहिंदी भाषी–100 रु.)

'मानव की वैज्ञानिक उपलब्धियां' – दवे छाया महेंदू, राजकोट.

पर्याप्त संख्या में लेख न आने के कारण इस वर्ष 'क' एवं 'ख', दोनों वर्गों का मूल्यांकन संयुक्त रूप से किया गया. मूल्यांकन सर्वश्री नारायण दत्त, जयंत एरंडे, एवं गिरिराज गोविल ने किया. सभी पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कार राशि यथाशीघ्र भेजी जा रही है. वर्ष 1986 के लिए लेख आमंत्रित हैं.

कदम बढ़ते के विज्ञान

* सुमन कुमार शर्मा
भौतिक धातुकीय प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, बंबई–400 085

हमारे देश में परमाणु ऊर्जा का विकास :

हाल ही में परमाणु ऊर्जा विभाग ने कुछ परियोजनाओं को सफलतापूर्वक पूरा कर भारत को परमाणु क्षमता से संपन्न देशों की श्रेणी में एक विशिष्ट स्थान दिला दिया है. 12 अगस्त 1985 को मद्रास परमाणु बिजलीघर (कलपाक्कम), की 235 मैगावाट क्षमता की दूसरी इकाई से बिजली प्राप्त होने लगी. इसके साथ ही देश में परमाणु ऊर्जा उत्पादन क्षमता 1230 मैगावाट हो गयी है. बिजलीघर की पहली इकाई 2 जुलाई, 1983 को कार्यरत हुई थी.

एक अन्य कार्यक्रम के अंतर्गत भारत का सबसे बड़ा आधुनिकतम परमाणु रिएक्टर 'ध्रुव' 8 अगस्त को रात 2 बजकर 42 मिनट पर क्रांतिक हो गया. भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में स्थित 100 मैगावाट क्षमता वाले इस रिएक्टर में ईंधन के रूप में प्राकृतिक यूरेनियम और मंदक के रूप में भारी पानी का उपयोग किया जाता है. इस रिएक्टर से आयोडीन –131 जैसे समस्थानिकों का उत्पादन संभव हो सकेगा जोक चिकित्सीय निदान व उपचार में बहुत उपयोगी होते हैं. इसके साथ ही इस रिएक्टर से शोधकर्ताओं को अनेक नयी सुविधाएं प्राप्त हो सकेंगी.

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी मद्रास स्थित फास्ट ब्रीडर टेस्ट रिएक्टर है जो 18 अक्तूबर 1985 को सक्रिय हुआ. इस रिएक्टर में देश में ही विकसित प्लूटोनियम – यूरेनियम कार्बाइड ईंधन को उपयोग में लाया गया है. इस रिएक्टर की विशेषता यह है कि इसमें जितने ईंधन की खपत होती है उससे अधिक ईंधन इसमें उत्पन्न होता है. इसके साथ ही दुनिया में भारत सातवां और विकासशील देशों में पहला देश है जिसके पास फास्ट ब्रीडर रिएक्टर है. इन कार्यक्रमों के सफलतापूर्वक चलने से भारत को परमाणु रिएक्टरों के निर्माण में पूर्ण दक्षता अर्जित हो गयी है.

हेली का धूमकेतु :

आजकल विश्व के वैज्ञानिकों व खगोलविदों की आंखें हेली के धूमकेतु पर टिकी हुई हैं. यह धूमकेतु पृथ्वी की कक्षा के दायरे में पहुंच गया है. 27 नवंबर को यह पृथ्वी से न्यूनतम दूरी पर था तथा सूर्य का चक्कर लगाने के बाद अपनी वापसी यात्रा के दौरान 11 अप्रैल 1986 को पुनः पृथ्वी से न्यूनतम दूरी पर होगा. बीच की इस अवधि के दौरान कई अवसरों पर दक्षिणी आकाश में क्षितिज के कुछ ऊपर सूर्योदय के पहले या सूर्यास्त के बाद इस धूमकेतु

को दूरदर्शी या कोरी आंखों से देखा जा सकेगा. हेली के धूमकेतु के नाभिक का व्यास 10 किलो मीटर के करीब है. धूमकेतु में दिखने वाली पूंछ का निर्माण सौरताप और सौर वायु के प्रभाव के कारण इसके नाभिक के धूलिकणों और बर्फराशि से निर्मित घनीभूत द्रव्य के वाष्पन से उत्पन्न गैसों से होता है. वैज्ञानिकों को धूमकेतु के नाभिक की जानकारी में बड़ी दिलचस्पी है क्योंकि नाभिक की संरचना में उस समय की भौतिकीय-रासायनिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण जानकारी मौजूद है जब प्राथमिक सौर नीहारिका (नैबुला) से हमारे सौर-मंडल के ग्रहों का सृजन हो रहा था. इसी दिशा में रूस, अमेरिका, जापान व यूरोपीय अंतरिक्ष एजेन्सी के अनेक अंतरिक्ष यान महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हेली धूमकेतु के निकट पहुंच रहे हैं. आशा है इन प्रयोगों के परिणामों से सौर मंडल के रहस्यों की परतें खुल सकेंगी.

सूंघनेवाली इन्सुलीन :

मधुमेह के उपचार में इन्सुलीन इन्जेक्शन के द्वारा प्रयोग में लायी जाती है. अब इन्सुलीन को नाक के नथुनों (नोस्ट्रिल्स) में एक विशेष प्रकार की पिचकारी से छिड़ककर ग्रहण किया जा सकेगा. यूनिवर्सिटी हॉस्पिटल, बोस्टन में किये गये परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि इस प्रकार ली गयी इन्सुलीन उतनी ही असरदार है जितनी कि इन्जेक्शन के द्वारा ली गयी. नासिका द्वारा कुछ दूसरी प्रोटीनें जैसे इन्टरफेरॉन कैल्सीटोनीन भी प्रभावपूर्ण ढंग से छिड़ककर ग्रहण की जा सकती हैं क्योंकि दवा के रूप में खाने से ये हमारे रक्त में मिलने से पहले ही हमारे पाचन तंत्र द्वारा बेअसर कर दी जाती हैं. इस विधि में केवल एक खराबी है कि इस प्रकार ग्रहण की गयी इन्सुलीन की मात्रा की प्रभावशीलता इन्जेक्शन द्वारा ली गयी मात्रा से दस गुना कम होती है.

जैलीयुक्त ग्लास :

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय में एक सिरामिक्स इंजीनियर व उसके साथियों ने ग्लास बनाने की एक नयी विधि का आविष्कार किया है. हजारों सालों से प्रचलित विधि में ग्लास बनाने के लिए सिलिका युक्त (बालू) पदार्थों को एक भट्टी में पिघला कर फिर मनचाहे आकार में ढाल लिया जाता है. इस नयी विधि में टेट्रामेथोक्सी-सिलेन (TEOS) नामक द्रव को सामान्य ताप पर एक सांचे में भर लिया जाता है. पानी मिलाने के बाद यह रसायन एक जैल में परिवर्तित हो जाता है तथा बाद में इस मिश्रण को 100 डिग्री सैल्सियस पर कुछ दिनों के लिए रख दिया जाता है. इसके बाद जो ग्लास प्राप्त होता है वह सामान्य ग्लास की तरह मजबूत तथा रासायनिक गुणों से युक्त होता है. इस प्रकार ग्लास बनाने में शक्तिशाली भट्टियों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा साथ ही बहुत बड़े व जटिल आकार में ग्लास को आसानी से ढाला जा सकता है.

सागर में छिपी ऊर्जा :

सोवियत वैज्ञानिकों के अनुसार समुद्र के नीचे प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार व्याप्त हैं. यह गैस पानी और मीथेन गैस के बर्फ समान मिश्रण जिसे गैस हाइड्रेट या क्लेथरेट कहते हैं, के अंदर पायी जाती है. गैस हाइड्रेटस की संरचना पानी के अणुओं से बने त्रिविमीय लैटिस के रूप में होती हैं जिनके बीच वाले रिक्त स्थान में मीथेन के अणु होते हैं. इस प्रकार से बने पदार्थ बर्फ के समान होते हैं तथा उनके अंदर बड़ी मात्रा में मीथेन गैस के अणु बंद होते हैं. एक आंकलन के अनुसार एक घन मीटर गैस हाइड्रेट के अंदर 170 घन मीटर मीथेन गैस वायुमंडलीय दाब पर होती है. इस प्रकार के प्राकृतिक गैस हाइड्रेटस के निर्माण के लिए उपयुक्त उच्च दाब व कम ताप समुद्र के नीचे आसानी से उपलब्ध हो जाता है. जब किसी एक गैस हाइड्रेट को गरम किया जाता है तो यह गैस व पानी में परिवर्तित हो जाता है. सोवियत वैज्ञानिकों के अनुसार करीब 10,000 लाख घन किलोमीटर गैस समुद्र की गहराइयों में बंद है.

सिद्धांत / सूत्र / समीकरण

आइवन बी. राम
रिएक्टर कंट्रोल प्रभाग, भा. प. अ. कें., बंबई-400085

किरचॉफ का विकिरण संबंधी नियम :–

गुस्ताफ रॉबर्ट किरचॉफ (1824–1887) एक जर्मन भौतिक शास्त्री थे. उनका भौतिकी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है. वर्णक्रम-विश्लेषण के द्वारा सूर्य में उपस्थित तत्वों का अनुमान लगाने में उनका मौलिक योगदान है. उच्च ताप पर गैसें जिन प्रकाश तरंगों का विकिरण करती हैं, निम्न ताप पर उसी विकिरण का अवशोषण करती हैं. इस महत्वपूर्ण तथ्य को सर्वप्रथम किरचॉफ ने बताया. इसके अतिरिक्त विद्युत परिपथ संबंधी नियमों से भी इनका नाम जुड़ा है. किरचॉफ की सबसे महत्वपूर्ण खोज कृष्णिका–वस्तु (ब्लैक–बॉडी) की कल्पना का प्रतिपादन है. इस कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए है, कि बाद में मैक्स–प्लांक ने कृष्णिका वस्तु के वर्णक्रम में ऊर्जा के आबंटन की व्याख्या करने के लिए क्वांटम–परिकल्पना को जन्म दिया. विकिरण संबंधी नियम भी समझने के लिए पहले कृष्ण–वस्तु के बारे में जानना आवश्यक है. जब प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है तो प्रकाशीय ऊर्जा का कुछ भाग अवशोषित हो जाता है और शेष भाग परावर्तित हो जाता है. कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं, जो पड़ने वाली समस्त ऊर्जा को अवशोषित कर लेती हैं. ऐसी वस्तुएं कृष्णिका–वस्तु कहलाती हैं. इसी प्रकार कृष्णिका वस्तु को यदि गर्म करें तो विकिरणित ऊर्जा अधिकतम होती है. दूसरें शब्दो में कृष्णिका वस्तु की विकिरण–क्षमता अवशोषण क्षमता के बराबर होती है और उसका मान इकाई होता है. ये गुण वस्तु की पदार्थीय संरचना से स्वतंत्र होते हैं. उपर्युक्त नियम ही किरचॉफ का नियम है.

किरचॉफ के विद्युत–परिपथ संबंधी नियम :– विद्युत परिपथ उस संरचना को कहते हैं, जिसमें विद्युतधारा एक बिंदु से चलकर परिपथ में घूमती हुई वापस उसी बिंदु पर आ जाती है, और इस प्रकार एक चक्र स्थापित हो जाता है. किसी परिपथ में एक से अधिक चक्र भी हो सकते हैं. किरचॉफ के परिपथ संबंधी नियम को दो भागों में बांट सकते हैं. (1) किरचॉफ का धारा संबंधी नियम (2) किरचॉफ का विभव संबंधी नियम.

(1) **धारा संबंधी नियम :–** किसी विद्युत परिपथ पर जोड़ों पर (जहां परिपथ की बहुत से शाखाएं मिलती हैं) मिलने वाली विद्युत धाराओं का बीजीय योग शून्य होता है.

(2) **विभव संबंधी नियम :–** किसी भी वास्तविक परिपथ में प्रतिरोध, बैटरी, वाल्व, ट्रांजिस्टर, संधनित्र आदि घटकों की उपस्थिति के कारण, एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक जाने में विद्युत विभव बदलता

$$p = RTd + (B_0RT - A_0 - C_0/T^2)d^2 + (bRT - a - c/T^2)d^2 \quad \cdots (1)$$

$$\eta^2 = 1 + \Sigma \frac{Am\lambda^2}{\lambda^2 - \lambda m^2} \quad \cdots (2)$$

$$\frac{1}{c^2}\frac{\partial^2\psi}{\partial t^2} = \frac{\partial^2\psi}{\partial x^2} - \mu^2\psi \quad \cdots (3)$$

$$d\sigma_0 = \frac{r_0^2}{2}\left(\frac{E_p'}{E_p}\right)^2\left(\frac{E_p}{E_p'} + \frac{E_p'}{E_p} - Sin^2\theta\right)d\Omega \cdots (4)$$

$$A_0 = A_+ + A_- \quad \cdots (5)$$

है. विभव संबंधी नियम के अनुसार किसी चक्र में विद्युत विभव का बीजीय योग शून्य होता है.

उपरोक्त दोनों नियम विद्युत–इंजीनियरी के रीढ़ नियम हैं. क्योंकि इनके आधार पर ही विद्युत परिपथों का विश्लेषण एवं आकल्पन संभव है.

केलॉग नियम :–हरबर्ट हंफरी केलॉग (जन्म 1920–अमरीकी) धातुशास्त्री हैं जिनका मुख्य योगदान उच्चताप रसायनिकी में है. प्रस्तुत नियम किसी वास्तविक गैस लिए उसके दाब (p) और घनत्व (d) को सूत्र (1) में प्रदर्शित करता है. जहां R = गैस स्थिरांक एवं T = ताप (केल्विन) तथा अन्य राशियां स्थिर प्राचल हैं जो गैस विशेष से संबंधित होती हैं.

केल्विन का प्रमेय :–(केल्विन का परिचय पहले दिया जा चुका है, थामसन प्रभाव तथा केल्विन ताप के संदर्भ में) किसी भी द्रव में दो प्रकार की गतियां संभव हैं, रेखीय एवं भ्रामक (भंवर). कल्पना करें कि बहते द्रव में भंवर उपस्थित है. केल्विन का प्रमेय यह बताता है कि यदि द्रव की एन्ट्रॉपी स्थिर है और द्रव में घर्षण आदि बल नहीं हैं तो यह भंवर द्रव के साथ बिना नष्ट हुए बहता रहेगा, वास्तव में आदर्श द्रव में भंवर का अस्तित्व स्वतंत्र होता है. अर्थात न तो उसे उत्पन्न कर सकते हैं और न ही नष्ट.

केटलर हेल्महोल्टज् सूत्र :–(1) जॉन अर्नोल्ड अल्वर्ट केटलर (जन्म 1908) एक डच रसायन शास्त्री थे जिनका मुख्य योगदान एक्स–रे मणिमिति, दूर अवरक्त प्रकाश के अवशोषण एवं परावर्तन वर्णक्रमदर्शन, ठोस विलयन एवं विद्युत चुंबकीय रसायन के क्षेत्र में है. (2) लुडविग फर्डिनड फॉन हेल्महोल्टस (जन्म 1894) महान जर्मन वैज्ञानिक थे जिनका बहु-मुखीय योगदान है. उनको एक प्रकार जैव भौतिकी का पिता मान सकते हैं, आप्थैल्मोस्कोप का आविष्कार, नेत्रीय दृष्टि एवं रंग, श्रवण विज्ञान, प्रकाश का वेग, गणित में ज्यामिति आदि में इनका मुख्य योगदान है. प्रस्तुत सूत्र (2) प्रकाश के असामान्य विक्षेपण से संबंधित है. जैसा कि हम जानते हैं कि सामान्य विक्षेपण में वर्तनांक प्रकाश की तरंगदैर्ध्य के साथ घटता है, परंतु असामान्य विक्षेपण में उसके विपरीत होता है, सूत्र (2) वर्तनांक तथा तरंगदैर्ध्य में संबंध दर्शाता है.

यहां Am एवं λm पदार्थ में उपस्थित m–वें प्रकार के अणु का स्थिरांक एवं उन्मुक्त आकाश में उसकी आवृत्ति से संलग्न तरंगदैर्ध्य है (अर्थात अणु की प्राकृतिक आवृत्ति से संबंधित है).

क्लाइन – गोर्डन समीकरण :–क्लॉड ॲलोसिस क्लाइन (जन्म 1925) एक फ्रांसीसी भौतिक शास्त्री हैं इनका न्यूक्लीय भौतिकी के क्षेत्र में मुख्य योगदान है. प्रस्तुत समीकरण (3) तरंग यांत्रिकी से संबंधित एक महत्वपूर्ण समीकरण है जो अदैशिक मेसॉन (स्कैलर मेसॉन) की गति का निरूपण करता है.

जहां μ = मेसॉन की संहति है, ψ = प्रायिकता तरंग फलन तथा C = प्रकाश का शून्य में वेग. यहां यह विचारणीय है कि यदि $\mu = 0$ हो तो यह समीकरण फोटॉन तरंग का निरूपण करता है. यह भी उल्लेखनीय है कि यह समीकरण प्रत्यस्थ माध्यम में लचकदार डोरी की गति का भी निरूपण करता है.

क्लाइन निशिना सूत्र :–योशिओ निशिना (1890 1951) एक जापानी भौतिक शास्त्री थे, जिन्होंने

(शेष पृष्ठ 45 पर पढ़ें)

बना कर देखें

समकलित परिपथ (IC) प्रवर्धक

*

अशोक कुमार महंत

डी. आर. पी., भा. प. अ. वि. केंद्र, बंबई–400 085.

श्राव्य प्रवर्धक का कार्य, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, सूक्ष्म विद्युत तरंगों को शक्तिशाली बनाकर श्रवण योग्य बनाना है. रेकॉर्ड प्लेयर की सुई (Stylus) या टेप रेकॉर्डर के चुंबकीय शीर्ष (मैगेनेटिक हेड) से प्राप्त विद्युत सिग्नल अति सूक्ष्म आयाम के होते हैं. ये सिग्नल इतनी कम ऊर्जा के होते हैं कि सीधे लाउडस्पीकर द्वारा ध्वनि का पुनर्उत्पादन करने में सक्षम नहीं होते. अतः प्रवर्धक की आवश्यकता होती है. सिग्नल का प्रवर्धन दो चरणों में किया जाता है. पहले चरण में सिग्नल के आयाम को बढ़ाया जाता है (विभिन्न आवृत्ति के सिग्नल के लिए विभिन्न स्तर का प्रवर्धन आवश्यक होता है, इसका निर्धारण सिग्नल स्रोत पर निर्भर करता है. सिग्नल स्रोत के अभिलाक्षणिक वक्र को देख कर इसका पता लगाया जा सकता है). इसे पूर्व प्रवर्धन (प्री एम्प्लीकेशन) कहते हैं. पूर्व प्रवर्धक में यह प्रबंध भी रहता है कि कौन–सी आवृत्ति को अधिक प्रवर्धित करना है व कौन सी आवृत्ति को कम. विशेषतः उच्च व निम्न आवृत्तियों को नियोजित करने की सुविधा ट्रेबल बास कन्ट्रोल द्वारा संभव होती है.

पूर्व–प्रवर्धक से प्राप्त सिग्नल शक्ति प्रवर्धक को दिया जाता है व शक्ति प्रवर्धक से प्राप्त सिग्नल लाउडस्पीकर के द्वारा ध्वनि पुनर्उत्पादित करता है.

आजकल पूर्व आलेखित कैसेट टेप उपलब्ध हैं. अतः टेप रेकार्डर का स्थान टेप डेक ने ले लिया है. जिसका प्रयोग कैसेट टेप को चलाने के लिए किया जाता है. टेप डेक से प्राप्त सिग्नल को श्राव्य प्रवर्धक के द्वारा शक्तिशाली बना कर लाउडस्पीकर द्वारा सुन सकते हैं.

प्रस्तुत है एक 7 वॉट शक्ति के श्राव्य प्रवर्धक का विवरण.

चित्र–1 में प्रवर्धक का परिपथ दर्शाया गया है. परिपथ का मुख्य घटक एक समाकलित परिपथ (संक्षेप में स. प.) TBA 810 है, इसमें कुल 16 पिनें हैं. पिन क्रमांक 14,5 व 12, 13 एक ऊष्माचालक पत्ती (हीट सिंक) के रूप में प्रयुक्त हुई है जिसका कार्य स. प. में उत्पन्न उष्मा को वातावरण में वितरित करके स. प. का तापक्रम उचित स्तर पर बनाये रखना है. इस प्रकार वास्तव में स. प. में केवल 12 ही पिनें हैं. चित्र 2– (अ) में प्रिंटेड परिपथ बोर्ड (संक्षेप में प्रि. प. बोर्ड) की तांबे की पर्त दिखायी है व चित्र 2 (ब) में प्रि. प. बोर्ड पर घटकों की स्थिति दिखायी गयी है. प्रि. प. बोर्ड बाजार में उपलब्ध है.

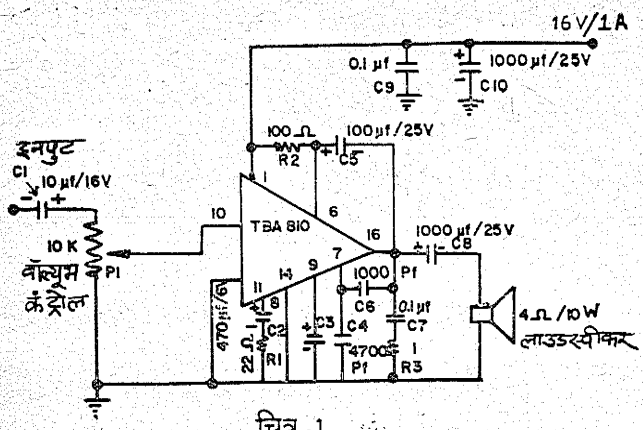

चित्र 1.

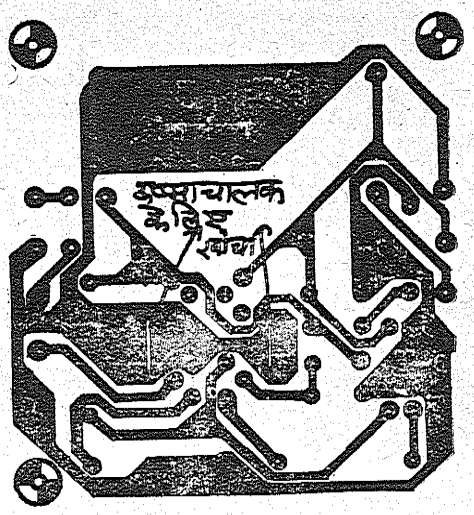

चित्र 2(अ)

प्रि. प. बोर्ड पर सभी घटकों को सोल्डर कर लेने के पश्चात (25 वॉट के सोडरिंग छड़ का ही प्रयोग करें) लाउड स्पीकर, इनपुट व शक्ति स्त्रोत के लिए तार जोड़ लेने चाहिए. 7 वॉट शक्ति प्राप्त करने के लिए 16 वोल्ट/1 अम्पीयर का शक्ति स्त्रोत व 4 ओह्म/10 वाट का लाउडस्पीकर का प्रयोग करना आवश्यक है.

पिन क्रमांक 4, 5 व 12, 13 के स्थान पर प्रयुक्त पत्ती के साथ एक वाह्य ऊष्माचालक लगाना अतिआवश्यक है, अन्यथा स. प्र. गर्म होकर कम शक्ति प्रदान करेगा अथवा स. प. के नष्ट होने की भी संभावना है. ऊष्माचालक चित्र–3 में दर्शाया गया है, एवं वाजार में उपलब्ध है. इसे लगाने हेतु प्रि. प. बोर्ड में खांचा कटा हुआ है. जहां इसे ऊष्माचालक पत्ती के साथ सोल्डर करना चाहिए.

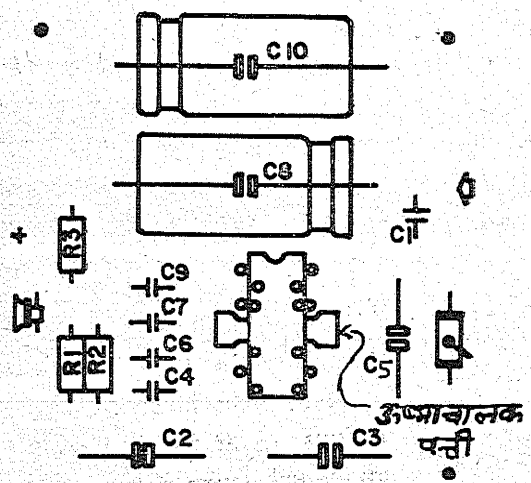

चित्र 2(ब)

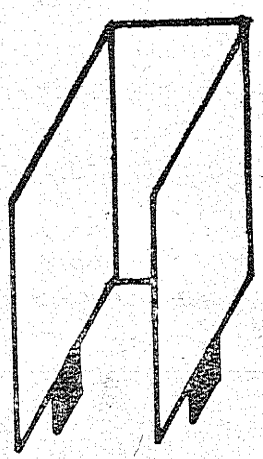

चित्र. 3.

प्रि. प. बोर्ड एक उपयुक्त केबिनेट में लगाया जा सकता है, उसी केबिनेट में ऊर्जा स्रोत को भी लगाना चाहिए. वॉल्यूम कन्ट्रोल, ऑन/ऑफ स्विच, लैंप आदि को केबिनेट के सामने वाले पेनल पर लगायें व इनपुट देने के लिए एक सॉकेट पिछले पेनल पर लगायें. इनपुट सॉकेट व प्रि. प. बोर्ड के बीच शील्डेड तार का प्रयोग करें.

प्रवर्धक का संपूर्ण परिपथ बनाने का खर्च लगभग 40 रु. है. कैबिनेट व शक्ति स्रोत का मूल्य शामिल नहीं है. यदि आपका टेप डेक स्टीरियो हैं तो इस प्रकार के दो प्रवर्धक बनाने होंगे.

घटक सूची :–

स. प. : TBA 810–एक.

प्रतिरोध : 1, 22, 100 ओह्म का एक–एक तथा वाल्यम नियंत्रण 10 किलो ओहम का एक (सभी 1/4 वाट शक्ति के)

इलेक्ट्रोलाइटिक धारित्र :–

10 मा. फे./16 वो.; 100 मा. फे./16 वो.; 100 मा. फे./25 वो. तथा 470 मा. फे./6 वो. का एक–एक और 1000 मा. फे./25 वो. के दो धरित्र.

डिस्क धारित्र :–

0.1 मा. फे. के दो तथा 4700 पि. फे. और 1000 पि. फे. का एक–एक.

अन्य :–सोल्डरिंग छड़ 24 वाट, सोल्डरिंग धातु 50 ग्राम.

प्रि. प. बोर्ड–1, ऊष्मा चालक–1, हुकअप तार केबिनेट, नट, वोल्ट, आदि.

(पृष्ठ 42 का शेष भाग)

सर्वप्रथम इस सूत्र की स्थापना की. इस सूत्र (4) से प्रकाश कण (फोटॉन) के कॉम्प्टनीय विकीर्णन क्रॉस सेक्शन प्राप्त किया जा सकता है, इस सूत्र के अनुसार अनध्रुवित प्रकाश का किसी ठोस कोण में प्रति इलेक्ट्रॉन विकीर्णन क्रॉस सेक्शन $d\sigma_e$ होगा. जहां Ep पर आपाती फोटॉन की ऊर्जा, Ep' विकीर्णित फोटॉन की ऊर्जा तथा r_0 इलेक्ट्रॉन का अर्धव्यास (क्लासिकल रेडियस) है.

कोलरॉश का नियम :–फरेडरिक विल्हम जार्ज कोलरॉश (1814–1910) एक जर्मन भौतिक शास्त्री थे जिनका मुख्य योगदान विभिन्न प्रकार के उपकरणों का आविष्कार तथा बहुत सी भौतिक राशियों के मापन में है. प्रस्तुत नियम यह बताता है कि किसी विद्युत विश्लेष्य की विद्युत चालकता में प्रत्येक आयन समान रूप से भाग लेता है, जो दूसरे आयनों से अप्रभावित होता है. वास्तव में अति तनुविलयन में चालकता को समीकरण (5) से ज्ञात कर सकते हैं. जहां A+ धनायन द्वारा दी गयी चालकता है. और A– ऋणायन द्वारा दी गयी चालकता है.

(पृष्ठ 33 का शेष भाग)

9. किसी भी प्रकार के टी. वी. पर VCR लगाया जा सकता है. परंतु, VCR टेप पर रिकार्डेड कार्यक्रम तभी देखे जा सकते हैं जब–

(अ) दोनों टी. वी. और वी. सी. आर. रंगीन हों, (ब) टी. वी. रंगीन हो, (स) दोनों में ही एक ही प्रसारण विधि का प्रयोग किया जाये, (द) एक ही कंपनी द्वारा निर्मित हो.

10. VCR का प्रयोग कार्यक्रम देखने एवं रिकार्ड करने के लिए किया जा सकता है. कार्यक्रम रिकार्ड करने के लिए उसका टी. वी. से जुड़ा रहना–

(अ) आवश्यक है, (ब) आवश्यक नहीं है, (स) हानिकारक है, (द) उपरोक्त सभी गलत है.

सही उत्तर : 1 (ब), 2 (ब), 3 (स), 4 (ब), 5 (ब), 6 (अ), 7 (स), 8 (द), 9 (स), 10 (ब).

–डॉ. उमेश मिश्र

64, शांतिनिकेतन, अणुशक्ति नगर,
बंबई–400094.

लेखकों से निवेदन

वैज्ञानिक के लिए लेख भेजते समय लेखक कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें—

‡ लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक जानने के लिए उत्सुकता जगाये.

‡ लेख मौलिक और पठनीय हो तथा भाषा सरल और बोधगम्य.

‡ जहां तक हो सके अनुदित लेख न भेजें. यदि भेजना आवश्यक हो (विषय प्रस्तुतीकरण के कारण) तो सदर्भ की पूरी जानकारी दें.

‡ लेख टाइप किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में कागज के एक ही ओर लिखें. शब्दों की अधिकतम संख्या 2000 शब्द.

‡ सचित्र लेख छापने में हमें प्रसन्नता होती है किंतु चित्र काली स्याही से स्पष्ट बने होने चाहिए. आकार 7×10 सें. मी. अथवा 14×20 सें. मी. होना सुविधाजनक होगा.

‡ लेख संबंधी पत्र–व्यवहार करते समय कृपया अन्य बातों, जैसे कि 'क्या मेरा वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है?' आदि न लिखें इससे पत्रोत्तर में विलंब की संभावना बढ़ जाती है.

प्रकाशित सामग्री पर पारिश्रमिक दिया जाता है.

DEVISING THE RIGHT TECHNOLOGY MIX FOR RESULTS THAT MATTER MOST

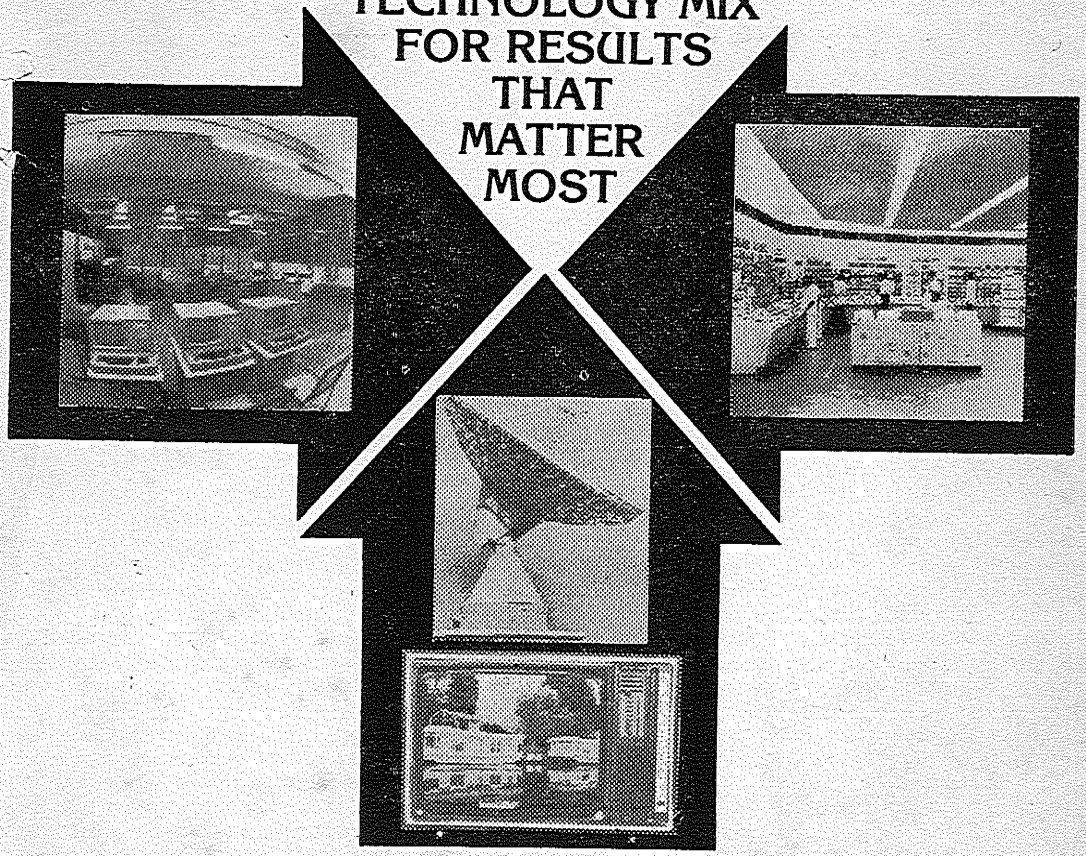

ECIL's thrust for the 80's and beyond is an excellent mix of those segments of technology that promise to dictate the shape of things to come.

Communications, Control Systems and Computers. The thrust areas of the future that ECIL concentrates on.

ECIL designed, developed and supplied related systems constitute a significant contribution to India's rapidly developing economy. Working to increase people's access to information, education and entertainment through ECTV and a wide range of antenna and communication systems;

Helping key sectors of industry—nuclear and non-nuclear—with their control instrumentation needs;

Facilitating better data management, and resource utilisation through advanced computer systems.

Besides, a large range of components and instruments that users in medicine, defence, labs and process industries have come to rely on.

ASP/ECIL/853A

A THRUST IN THE RIGHT DIRECTION

इलेकट्रानिक्स कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड
Electronics Corporation of India Limited
Hyderabad 500 762

GOVERNMENT OF INDIA
Department Of Atomic Energy
NUCLEAR FUEL COMPLEX

The seamless steel tube plants of NFC are producing on a commercial scale seamless stainless steel tubes/pipes and seamless Ball bearing steel tubes, meeting the most stringent specifications under certification of Lloyds, IBR etc, for chemical, fertilizer, metallurgical, petroleum, Nuclear, power generation & roller bearings industries.

RANGE OF SS TUBES/PIPES

5 mm to 200 mm outer dia and 0.5 mm to 20 mm wall thickness in grade AISI 304, 304L, 304H, 310, 316, 316L, 316Ti, 321, 347, 347H, 410 or any other austenitic grade to customers requirement, under specification ASTM-A 213, 312, 269 or any other international Standards

RANGE OF ROLLER BEARINGS TUBES

20 mm to 200 mm outer dia with wall thickness as per customers requirement in grade SAE 52100

★ ★ ★

For all your requirement please write to :

Marketing Manager
Nuclear Fuel Complex
E. C. I. L. (P. O.)
HYDERABAD - 500 762
Phone : 851239, 852351, 852361
T 0155-6304 Grams : "NUCFUEL"

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा डॉ. उमेश चंद्र मिश्र द्वारा ज्ञान मुद्रा, वडाला तथा श्री रजनीश प्रिंटिंग प्रेस, चेंबूर में मुद्रित व प्रकाशित.